ISSN 0974-1100

पूर्वदेवा

सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

PŪRVADEVĀ

A Social Science Research Journal

वर्ष 22 अंक 85 एवं 86 ■ संयुक्तांक ■ अप्रैल-सितम्बर, 2016

सम्पादक
डॉ.हरिमोहन धवन

मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी प्रकाशन

पूर्वदेवा

सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

PŪRVADEVĀ   A Research Journal of Social Sciences

वर्ष 22   अंक 85 एवं 86   संयुक्तांक   अप्रेल– सितम्बर, 2016

❒

सम्पादक

डॉ. हरिमोहन धवन

मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी

बाण भट्टमार्ग, सेन्ट्रल स्कूल के सामने, उज्जैन (म.प्र) 456010

दूरभाष (0734) 2518737

email- mpdsaujn@gmail.com

पूर्वदेवा

सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

परामर्श

डॉ. जयप्रकाश कर्दम

वरिष्ठ साहित्यकार एवं सम्पादक, दलित साहित्य वार्षिकी, नईदिल्ली

डॉ. आर. जी. सिंह

पूर्व आचार्य, समाजशास्त्र,

बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर राष्ट्रीय सामाजिक विज्ञान संस्थान, महू

डॉ. रहमान अली

पूर्व आचार्य,प्राचीन भारतीय इतिहास,संस्कृति व पुरातत्व अध्ययन शाला,

विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

सम्पादक मण्डल

डॉ. अरूण वर्मा

पूर्व आचार्य, हिन्दी,

शास. माधव कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, उज्जैन

डॉ. शैलेन्द्र पाराशर

अध्यक्ष– डॉ. अम्बेडकर पीठ, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

डॉ. आर. के. अहिरवार

विभागाध्यक्ष–प्राचीन भारतीय इतिहास,संस्कृति व पुरातत्व अध्ययन शाला,

विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

सम्पादक : डॉ. हरिमोहन धवन

सह–सम्पादक, प्रकाशक एवं मुद्रक : पी. सी. बैरवा

© स्वात्वाधिकारी : मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी,

बाणभट्ट मार्ग, सेन्ट्रल स्कूल के सामने, उज्जैन (म.प्र.)

इस अंक का मूल्य रूपये 150/–

वित्तीय सहयोग

भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद, नईदिल्ली

सम्पादन व प्रकाशन सर्वथा अवैतनिक एवं अव्यवसायिक

पूर्वदेवा में प्रकाशित लेख एवं उनमें व्यक्त विचार लेखकों के निजी विचार है.

सम्पादक व प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है.

पूर्वदेवा सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

अनुक्रम

1-	प्राचीन राजस्थान में श्रेणीबद्ध जीवन	डॉ. कमलेश शर्मा	*1*
2-	प्राचीन काल से सल्तनत काल तक भारतीय शिल्प एवं शिल्पी	डॉ. लक्ष्मी ठाकुर	*9*
3-	भारतीय मूर्तिकला की शिल्पकला में लकुलीश	डॉ. सहदेवसिंह	*15*
4-	भारत के इतिहास सृजन में शिल्पियों का योगदान	डॉ. शैलजा साबले	*21*
5-	मेवाड़ के महान शिल्प विशारद	ज्योति जोशी	*29*
6-	शर्की कालीन मस्ज़िद एवं उसके शिल्पकार	कुसुम राय	*41*
7-	नागार्जुन के काव्य में दलित चेतना	डॉ0 तबस्सुम शेख	46
8-	डॉ. अम्बेडकर, समतामूलक समाजः चुनौतियाँ एवं समाधान	डॉ0 रमा पांचाल	*55*
9-	चिकित्सा विभाग में संगठन की भूमिका	डॉ. सरिता पाल	*65*
10-	सामाजिक समरसता एवं भारतीय संविधान डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर का योगदान	डॉ. रुपेशकुमार सिंह	*70*
11-	कृषकों के आर्थिक उन्नयन में जैविक कृषि का योगदान	डॉ0 सादीकमोहम्मद खान	*84*
12-	उज्जैन सम्भाग की चयनित औद्योगिक इकाईयों में मानव संसाधन	डॉ. मनीषा जैन	*93*
13-	इन्दौर नगर में महिला बाल–श्रमिकों का मानव भूगोल	डॉ. धर्मेन्द्र सिंह चौहान	*102*

इस अंक के लेखक

डॉ. कमलेश शर्मा– विभागाध्यक्ष–इतिहास, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

डॉ. लक्ष्मी ठाकुर– प्राध्यापक–शासकीय एम.जी.एम. कॉलेज, इटारसी (म0प्र0)

डॉ. सहदेवसिंह– सहायक शोध अधिकारी, श्री नटनागर शोध संस्थान, सीतामउ, मालवा (म.प्र.)

डॉ. शैलजा साबले– अतिथि विद्वान, शास. माधव कला वाणिज्य एवं विधि महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

ज्योति जोशी– शोधार्थी–श्री नटनागर शोध संस्थान, सीतामउ, मालवा (म.प्र.)

कुसुम राय– शोधार्थी– समाज विज्ञान अध्ययनशाला, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)

डॉ. तबस्सुम शेख–प्राध्यापक, शास.इंदिरा गांधी गृह विज्ञान कन्या महाविद्यालय, शहडोल (म.प्र.)

डॉ. रमा पांचाल–साहित्यकार, 82 ई.के. सेक्टर, स्कीम नं. 54, विजय नगर, इंदौर (म.प्र.)

डॉ. सरिता पाल– शोधार्थी , एल.आई.जी. 223, पटेल नगर कॉलोनी, उज्जैन (म.प्र.)

डॉ. रुपेशकुमार सिंह– सहा.प्राध्यापक–डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुर्नवास विश्वविद्यालय, लखनउ (उ.प्र.)

डॉ. सादीक मोहम्मद खान–83 जयस्तम्भ चौक, एम.जी.रोड़, देपालपुर, जिला–इंदौर (म.प्र.)

डॉ. मनीषा जैन– 81, राजकुमार कॉलोनी, नागदा जंक्शन, जिला–उज्जैन (म.प्र.)

डॉ. धर्मेन्द्रसिंह चौहान– शोधार्थी , एस.ए.बी.वी. देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
वर्ष 22, अंक 85–86, अप्रेल–सितम्बर, 2016 पृ. 1–8 **ISSN 0974 -1100**

प्राचीन राजस्थान में श्रेणीबद्ध जीवन

प्रॉ. डॉ. श्रीमती कमलेश शर्मा

प्राचीनकाल से ही मनुष्य ने अपने वातावरण व परिस्थिति के अनुसार अपने आपकों संबद्ध किया है। उसमें सहकारिता की भावना एक सहज प्रवृत्ति है । श्रेणीयाँ उसकी पारस्परिक सहयोग, विश्वास, कर्तव्य, सुरक्षा आदि प्रवृत्तियों की द्योतक हैं । व्यवसायियों और शिल्पकारों ने अपने व्यवसाय व शिल्प का उचित ढंग से विकास करने के लिए व उन्हें सुरक्षा प्रदान करने के लिए अपने अपने संगठनों का निर्माण किया । ये ही संगठन श्रेणी कहलाए । इन संगठनों को प्रायः सभी विद्वानों ने मध्यकालीन यूरोप की गिल्ड्स नामक व्यापारिक समूहों का प्रारूप माना है ।

श्रेणीबद्ध जीवन की जानकारी के अनगिनत संदर्भ प्राचीन भारतीय साहित्य, अभिलेखों तथा मुद्राओं आदि में बिखरे पड़े हैं । प्राचीन काल से ही श्रेणी के लिए विभिन्न शब्दों का प्रयोग किया जाता रहा है जैसे– कुल, पूग, निकाय, जाति, बात, संघ, समूह, समुदाय, समुत्थान, वर्ग, सार्थ, निगम आदि । प्रत्येक श्रेणी का एक प्रधान या अध्यक्ष होता था । जिसे ''प्रमुख'' जेट्ठक, श्रेष्ठिन, ''श्रेष्ठ्य आदि नामों से संबोधित किया जाता था । अपनी संपन्नता व सामाजिक प्रतिष्ठा के कारण ये राजदरबारों में भी विशेष रूप से आदर पाते थे ।

ऋग्वेद में समाज तीन भागों में विभाजित था शासक–पुरोहित और वैश्य । वैश्य पशुपालक, कृषक और व्यापारी तीन उपवर्गों में बँटा था । उन वर्गों के साथ ही नगरीकरण की प्रवृत्ति बढ़ी और श्रेणियों का प्रादुर्भाव हुआ ।

वृहदारण्यक उपनिषद के एक संदर्भ में कहा गया है कि धर्म, अर्थ और काम की सिद्धी हेतु ब्रम्हा ने चार वर्णों की सृष्टि की, जिनमें वैश्यवर्ण विशेष रूप से आर्थिक कार्य कलापों से लिप्त होते हुए गुणी कहलाया । बौद्धिक साहित्य में ''गण'' और ''पणि'' शब्दों के उल्लेख प्राप्त होते हैं । जो आर्थिक क्षेत्र में सहकारिता के द्योतक हैं । श्रेणी अथवा श्रेणी शब्द के व्यापक प्रयोग और उस संस्था के व्यापक उल्लेख सर्वप्रथम पालि साहित्य में मिलते हैं । जातक कथाओं में श्रेणीयाँ, श्रेष्ठी, जेष्ठकों आदि के बहुत से उल्लेख हैं । धर्मशास्त्रों से यह स्पष्ट है कि व्यापार और वाणिज्य में लगे हुए सभी वर्गों को अपने व्यापार से सम्बद्ध क्षेत्रों में संघ बनाने का अधिकार राज्य की ओर से प्राप्त था । कौटिल्य कृषि, व्यापार और सैन्यकार्य करने वालों की सहाकरी संस्था को भी श्रेणी कहते हैं ।[1] मनुस्मृति के भाष्यकार मेधातिथि के अनुसार वेदज्ञ, ब्राह्मण, वणिक, शिल्पकार आदि के संघ श्रेणी है ।[2]

मिताक्षरा के अनुसार श्रेणी भिन्न जाति के लोगों का संगठन था जो अपनी किसी एक वस्तु का विक्रय करता था ।[3] वे अपने नियमों अथवा कानूनों का निर्माण भी कर सकते थे । इन नियमों को राज्य की ओर से पूरी मान्यता प्राप्त थी । प्रत्येक श्रेणी का अपना एक भवन होता था, जहाँ सभी सदस्य एकत्रित होते थे । लेखपद्धति से ज्ञात होता है कि गुजरात के चालुक्यों के राज्य में श्रेणियों की देखरेख का एक पृथक विभाग था । याज्ञवल्क्य स्मृति में श्रेणी के लिए ''पूग'' का उल्लेख हुआ है ।[4] यह एक ही नगर अथवा ग्राम में निवास करने वाले विभिन्न जाति के लोगों का समूह था । इनका एक मुखिया होता था जो महत्तर था । महार कहा गया । इन्हें श्रेष्ठि भी कहा गया है । नारद स्मृति में श्रेणी व्यवसायियों की सहकारी संस्था है ।[5] कात्यायन वणिकों के समूह को ''पूग'' मानते हैं । स्पष्ट है कि इन संस्थाओं में जाति को आधार नहीं बनाया जाता था वरन् व्यवसायों के आधार पर ही इनकी सदस्यता ग्रहण की जाती थी ।

व्यवहार प्रमुख में कहा गया है कि नाना जातीय लोगों के एक काम, व्यवसाय, आजीविका, वाणिज्य आदि करने वाले समूह श्रेणी है । ''नानाजातीयानां एकर्क्मकुर्वता'' समूह : श्रेणय :'' स्पष्ट है कि श्रेणीयों का निर्माण जातीय आधार

पर न होकर व्यावसायिक आधार पर होता था । यह भी आवश्यक नहीं था कि एक व्यवसाय की एक श्रेणी हो वरन् कई श्रेणीयाँ भी हो सकती थीं । स्मृतियों के अनुसार श्रेणियाँ एक ही व्यवसाय करने वाले लोगों के संगठन होते थे । वे अनेकों स्थानों के भी लोग हो सकते थे । पूर्वमध्यकालीन साहित्यिक एवं अतिलेखिक प्रमाणों में वृतिसंधों के उल्लेख है । अलबरूनी ने बहेलियों, चर्मकार, टोकरी और ढाल बनाने वालों के संदर्भ दिए हैं । 10 वीं शती के कामा अभिलेख में काम्यक में रहने वाले कुंभकार, मालाकार तथा शिल्पकारों की पृथक श्रेणियों का उल्लेख है । गोविन्दचन्द गहडवॉल के अभिलेख में पान उगाने वालों के गाँव का उल्लेख है ।

कल्चुरी सोढ़देव के अभिलेख में विभिन्न व्यवसाय करने वालों की बस्तियों का उल्लेख है पेहवा, करीतलाई, देवपारा आदि स्थानों से प्राप्त शिलालेखों से पूर्व मध्ययुगीन वृतिसंधों के बारे में जानकारी उपलब्ध होती है । स्मृति चंद्रिका में समूह के मुखिया के महत्व पर प्रकाश डाला गया है । उसके स्वेच्छाचारी होने पर राजा हस्तक्षेप कर सकता था, अर्थदण्ड लगा सकता था व उसकी संपत्ति भी छीन सकता था । प्रत्येक श्रेणी का अपना भवन होता था ।

जातकों तथा अन्य साहित्य में विभिन्न व्यवसायों के संबंद्ध श्रेणियों का वर्णन है । जिनकी संख्या 18 या उससे भी अधिक है – बढ़ई–लकड़ी का काम करने वाला, स्वर्णकार– सोना,चांदी आदि धातुओं का काम करने वाले, पत्थर का काम करने वाले, चर्मकार– चमड़े का काम करने वाला, दन्तकार, आदंयत्रिक–पनचक्की चलाने वाले, वंसकार–बांस का काम करने वाले, कसकर–ठठेरा, रत्नाकार–जौहरी, बुनकर–कपड़े बुनने वाला, कुम्हार–मिट्टी के बरतन बनाने वाला, तिलपिसक–तेली, डालिया बनाने वाले, रंगरेज–वस्त्र रंगने वाले, चित्रकार–चित्र बनाने वाले, धंत्रिक, कृषक–कृषि कार्य करने वाले, मछुए–मछली पकड़ने वाले, कसाई–जानवरों का माँस बेचने वाले ।

दक्षिण भारत में व्यापारियों व शिल्पियों की श्रेणियों का उल्लेख मिलता है । चालुक्य नरेश कृष्ण द्वितीय के मूलगुण्ड अभिलेख में श्रेणियों के 4 अध्यक्षों द्वारा 360 गायों के दान का उल्लेख मिलता है । श्रेणियों के संयुक्त रूप से दान देने के उल्लेख भी मिलते हैं । चालुक्यों के 12 वीं शती के मिलमुंडि अभिलेख में 505 व्यापारियों के एक निगम द्वारा धार्मिक कार्य हेतु दान देने का उल्लेख मिलता है ।

श्रेणीयों का आकार विशाल होता था, इनके अपने निश्चित नियम होते थे, जिनका पालन सभी सदस्यों को करना पड़ता था । श्रेणियों के संगठनों के संबंध में जातकों में उल्लेख आया है कि वाराणसी के पास 1000 परिवारों वाले बढ़ई लोगों का एक नगर था, जिनमें 500–500 परिवारों के ऊपर एक प्रधान कारीगर नियुक्त था । प्राचीन भारतीय साहित्य में श्रेणियों के नियमों की विस्तृत व्याख्या मिलती है । याज्ञवल्क्य, विष्णु, बृहस्पति व नारद की स्मृतियों में श्रेणियों के कार्यों उत्तरदायित्वों, अधिकारों, विभिन्न श्रेणियों के आपसी संबंध, श्रेणियों के सदस्यों के अधिकारों और कर्त्तव्यों, राज्य के उनके प्रति दायित्व, उनमें प्रचलित प्रथाओं आदि के विशद संदर्भ उनमें प्राप्त होते हैं ।

बृहस्पति के अनुसार नये निगम या नई श्रेणी को एक अनुबंध पत्र लिखना चाहिए और पंच उस राशि के भुगतान की गारन्टी दें । इस अनुबंध पत्र की एक प्रति सब सदस्यों को रंखनी चाहिए । जो कोई सदस्य अनुबंध पत्र की शर्तों को पूरा नहीं करता था उसकी समस्त सम्पत्ति जब्त कर ली जाती थी और उसे नगर से निकाल दिया जाता था ।[6]

स्मृतियों में साझेदारी के लिए ''सम्भूय समुत्थान'' शब्द का प्रयोग हुआ हैं । ''सम्भूय'' शब्द ''सम'' के साथ ''भू'' से बना है, जिसका तात्पर्य है ''एक साथ होना ।'' ''समुत्थान'' का तात्पर्य है – व्यवसाय या व्यापार का कर्म । अतः दोनों का सम्मिलित अर्थ हुआ वह कार्य या व्यापार या व्यवसाय जिसमें साझा परिश्रम, धन या दोनों हों ।[7]

याज्ञवल्क्य स्मृति में संधि व्यतिक्रम का भी उल्लेख मिलता है । इस व्यवहारपद में किसी समझौते या नियम का उल्लंघन और तदनुरूप दंड के बारे में विधि का निर्देश है । याज्ञवल्क्य के अनुसार संविद का उल्लंघन करने वाले का राजा सब कुछ हरण कर राष्ट्र निष्कासन का दण्ड दे ।[8]

नारद ने संविद व्यतिक्रम के लिए ''समस्यानुपाकर्म'' का प्रयोग किया है । बृहस्पति साझेदारों के गुणों का भी उल्लेख करते हैं । उनके अनुसार कुलीन, दक्ष, अनलस, प्राज्ञत, नाणकवेदी पुरों एवं जनपदों के संघों, नैगमों, नास्तिकों, पूगो गणो के नियमों की रक्षा होनी चाहिए और उन्हें कार्यान्वित करना चाहिए ।

बृहस्पति स्मृति से विदित होता है कि श्रेणी संगठन की एक प्रबंधकारी समिति होती है जिसमें पाँच तीन या दो सदस्य होते थे । उस समिति का एक अध्यक्ष होता था । प्रबंध समिति के सदस्य कार्य निपुण, सत्यनिष्ठ, कर्त्तव्यनिष्ठ, ज्ञाता योग्य व उच्च कुल के होते थे । श्रेणी की कार्यकारिणी अपराधी सदस्यों की निंदा भी कर सकते थे । उनकी भर्त्सना कर सकती थी और उन्हें श्रेणी से निकाल सकती थी । बृहस्पति के अनुसार श्रेणीयों के प्रमुखों द्वारा दूसरे लोगों के प्रति कड़ा या मृदुल जो भी व्यवहार नियमानुसार किया जाए उसे राजा भी अनुमोदित करें क्योंकि ये लोग विधानों के अधिकारी के रूप में प्रख्यात होते हैं । जब कार्यकारिणी और सदस्यों का किसी बात पर झगड़ा होता था तो राजा मध्यस्थ होकर अपना निर्णय देता था । यदि किसी श्रेणी के सदस्य राजकीय भाग के रूप में कर नहीं देते थे तो राजा उस कर का आठ गुणा उनसे वसूल करता था । यदि वे नगर छोड़कर भाग जाते थे तो उन्हें दण्ड दिया जाता था । नारद के अनुसार राजा को श्रेणीयों की अनैतिक या राज्य विरोधी गतिविधियों को रोकने का भी अधिकार था ।[10]

सातवीं सदी ईस्वी के उपरांत श्रेणीयों के अधिकारों में वृद्धि हुई । स्मृति चंद्रिका से विदित होता है कि श्रेणीयों को अपने व्यवसाय के विषय में पूर्ण नियम बनाने का अधिकार था व उन्हें न्यायिक अधिकार भी प्राप्त थे । कहा गया है कि यदि किसी समूह के सदस्य किसी झगड़े को न निबटा सकें तो उन्हें दो तीन या पाँच कार्य चिंतकों की नियुक्ति करनी चाहिए । इनके निर्णय को सदस्यों को मानना पड़ता था । श्रेणियाँ अपनी वस्तुओं की बिक्री के विषय में भी नियम बनाती थी । सदस्यों से भी समय–समय पर कर वसूल करती थी । राजा भी पुरों, जनपदों, संघों, नैगमों, पूगों की रक्षा करता था । शहरीकरण में वृद्धि के साथ–साथ श्रेणीयों का विकास समुचित ढंग से हुआ । इस काल में श्रेणियों के स्वरूप में परितर्वन होने लगा था और वे जातियों का रूप लेने लगी थी । मिताक्षरा स्मृति में यह परिवर्तन स्पष्ट दिखाई देता है । मिताक्षरा में श्रेणी का अर्थ एक व्यवसाय करने वालों का संघटन ही है । भट्टोत्पल ने भी श्रेणी का अर्थ एक जाति के व्यक्तियों का निगम बतलाया है । अभिधान चिंतामणि में भी श्रेणी का अर्थ को प्रकृति बताया है । पितामाह ने प्रकृतियों की संख्या 18 बतलाई है ।

प्राचीनकाल की श्रेणीयाँ अब प्रकृतियाँ ही कही जाने लगी । जैन साहित्य में आदिम जातियों की भी गणना श्रेणियों में, की गई है । 28 जैन श्रेणियों के दो विभाजन मिलते हैं :– एक स्पृश्य वर्ग और अस्पृश्य वर्ग । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि अब श्रेणियों की सामाजिक प्रतिष्ठा में कमी आ गई थी और उनकी आर्थिक स्थिति में भी गिरावट आने लगी थी । सांमतवाद के विकास से श्रेणियों की शक्ति में कमी आयी ।

राजस्थान के इतिहास में 8 वीं शताब्दी के बाद कस्बों व शहरों में व्यापारिक समुदाय का उदय एक महत्वपूर्ण तथ्य है ।[11] वाणिज्यीकरण की प्रक्रिया से श्रेणियों के विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ । राजस्थान की श्रेणियों के बारे में जानकारी जिनेश्वर के कथाकोश प्रकरण, लक्ष्मीघर के कृत्यकल्प, कुवलयमाला आदि साहित्यिक ग्रंथों व समकालीन अभिलेखों से प्राप्त होती है । जी.एन. शर्मा के अनुसार गांवों में संघ, समुदाय, गोष्ठियों का अस्तित्व था । ये श्रेणियाँ व्यावसायिक व धार्मिक संगठन के साथ–साथ अपने क्षेत्र के स्थानीय प्रशासन को भी संभालती थी । श्रेणियाँ स्थानीय मंदिरों के कार्यकलापों की भी व्यवस्था करती थी ।

कान्हडदे प्रबंध में चार उच्चवर्गों का उल्लेख है । इन वर्णों में चार वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के अलावा पीतलकार, रत्नाकर, कुमार, स्वर्णकार, मछलीपालक, बुनकर, कंसकर, बंसकर (बांस की वस्तुए बनाने वाले) महाजन (धन उधार देने वाले) नाई आदि भी शामिल थे । इन 18 वर्गों की तुलना प्राचीनकाल की 18 श्रेणियों से की जाती है जिनका उल्लेख जातकों व स्कंद पुराण में हुआ है । उत्तर भारत में श्रेणी के लिए ''देसी'' शब्द का प्रचलन भी था । महोआ में व्यवसायियों की देसी ने मंदिर के लिए दान प्रदान किया । देसी का उल्लेख संवत् 1202 के रामपाल वर्मा के नांदलोई अभिलेख व संवत् 1030 के विग्रहराज चतुर्थ हर्ष के अभिलेख में हुआ है । बंजारों व भामाओं के देसी का उल्लेख मिलता है । सियादनी अभिलेख में बंसारकओं, कंदुकाओं, तंबोलिया, शिलाकुटाओं की श्रेणियों का उल्लेख मिलता है । कांमा के अभिलेख में कुम्हारों, माला बनाने वालों आदि की श्रेणियों का उल्लेख मिलता है । आडवीं शताब्दी में

कांमा के विभिन्न उद्योगपति व शिल्पकार श्रेणियों में संगठित थे । कान्हड़दे–प्रबंध में श्रेणियों को वर्ण के नाम से संबोधित किया गया है । स्पष्ट है कि श्रेणियाँ जातियों में परिवर्तित हो गयी थी । श्रेणियों के धार्मिक कार्यों में मंदिर के रख रखाव, उनमें घी, धूप बत्ती और अर्ध्य आदि की व्यवस्था करना आदि प्रमुख थे । जैन, बौद्ध और हिन्दुओं के मठों के साधुओं के भोजन आदि की व्यवस्था करने की जिम्मेदारी भी श्रेणियाँ वहन करती थी । श्रेणियाँ मंदिर से सम्बद्ध पाठशाला व अस्पतालों आदि की व्यवस्था भी करती थी ।

विक्रम संवत् 1114–1085 ई. के उदयादित्य के झालारापाटन के अभिलेख में उल्लेख मिलता है कि उदयादित्य के शासन काल में तेली पटेल (श्रेणी प्रमुख) चाहला के पुत्र ने शिव के मंदिर का निर्माण करवाया और एक वापी (तालाब) खुदवाया । उसने प्रतिवर्ष मंदिर को तेल और मिठाई देने का वादा किया ।[12] स्पष्ट हो जाता है कि श्रेणियों के अतंर्गत श्रेणी प्रमुखों का स्थान महत्वपूर्ण था और उन्हें विशेषाधिकार भी प्राप्त थे । शेरगढ़ राजस्थान से प्राप्त अभिलेखों में भी श्रेणियों के धार्मिक कार्यों का उल्लेख है । शेरगढ़ का प्राचीन नाम कोषवर्धन था । परमार युग में यही सोमनाथ का मंदिर स्थित था । सोमनाथ के मंदिर की पूजा के लिए बहुत से अनुदान मिलते थे जिनका उल्लेख शेरगढ़ के अभिलेखों में है ।[13] शेरगढ़ के द्वितीय अभिलेख में मंदिर को दिए गये अनुदानों का वर्णन है । अधिकतर दानदाता व्यापारी या जमींदार हैं । तेलियों की श्रेणी का प्रमुख तैलिक राज था जिस पर सोमनाथ के दियों के लिए तेल पहुंचाने की जिम्मेदारी थी । दो तेल मिलों का तेल सोमनाथ मंदिर को पहुंचाया जाता था । मंदिर के बाहर ठहरने के लिए कुटियाऐं थी । स्पष्ट है कि प्राचीन काल से ही भारतीयों के जीवन में श्रेणियों का महत्वपूर्ण स्थान था । नियमों का उल्लंघन करने पर ये दण्डित भी होते थे । गुप्तोत्तर काल के बाद श्रेणियाँ अपने झगड़े राजकीय न्यायालयों में ले जाने लगी । सामान्यतः राजा इनके निर्णयों में हस्तक्षेप नहीं करता था । श्रेणियाँ अपने योद्धा भी रखती थी धन भी उधार देती थी व बैंकों की भाँति कार्य करती थीं । अपने सदस्यों के हितों की सुरक्षा के साथ–साथ देश के व्यापार और उद्योगों की उन्नति में इनकी सक्रिय भूमिका रही है ।

❐

सन्दर्भ –

1. *अर्थशास्त्र 2.5*
2. *मेघातिथि, मनु, 8.4*
3. *मिताझरा, याज्ञ स्मृति, 2.192*
4. *याज्ञवल्क्य स्मृति, 2.30*
5. *नारद स्मृति, 1.7*
6. *बृहस्पति स्मृति 2 17, 7.3*
7. *काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 2, पृ. 792*
8. *याज्ञवल्क्य स्मृति 2 186–87*
9. *बृहस्पति स्मृतिचंद्रिका 2, पृ. 194*
10. *नारद स्मृति 8/5*
11. *दशरथ शर्मा, राजस्थान थ्रू दि एजेज, पृ. 495*
12. *के.सी. जैन ऐनशिएन्ट सिटीज एण्ड टाउन्स ऑफ राजस्थान, पृ. 496*
13. *ए. इस्क्रिपशन्स फ्राम शेरगढ़, इपिग्राफिया इंडिया, वो. XXIII पृ. 130*

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
वर्ष 22, अंक 85–86, अप्रेल–सितम्बर, 2016 पृ. 9–14 ***ISSN 0974 -1100***

प्राचीन काल से सल्तनत काल तक भारतीय शिल्प एवं शिल्पी

डॉ. लक्ष्मी ठाकुर

महाकाव्यों में भी विविध प्रकार के शिल्पियों का उल्लेख मिलता है । महाभारत में हस्तनापुर में नाना प्रकार के शिल्पियों के रहने का उल्लेख है – सर्वशिल्पविदस्तत्र वासायग्यागमस्तदा[383अ] (महाभारत, आदिपर्व, अध्याय 199 पंक्ति 76) रामायण में अयोध्या नगर में सम्पूर्ण प्रकार के शिल्पियों के रहने का उल्लेख मिलता है – **सर्वयन्त्रायुधवतीमुषितां सर्वशिल्पिभि**[383ब] (रामायण बालकाण्ड, सर्ग 5, पंक्ति 30) ।

शुंगकालीन ग्रन्थ पतंजलि महाभाष्य जो पाणिनि की अष्टाध्यायी के सूत्रों के भाष्य मैं तद्युगीन शिल्प एवं शिल्पियों का समृद्ध चित्र मिलता है । पतंजलि ने शिल्पी के अन्तर्गत हाथ से काम करने वाले चतुर नाई से लेकर वादक, नर्तकी, गायक सबका समावेश किया है उनकी दृष्टि में शिल्पी अपनी उन्नति के लिए कार्य करते अपने शिल्प के माध्यम से उनका लक्ष्य पारिश्रमिक और नित नूतन प्रशंसक प्राप्त करना था ।[1] पंतजलि के महाभाष्य में मार्गदर्शक, मार्मरिक, खनक, रजक, कुम्भकार नापित, गायक, वादक, पाणिध, ताड़घ के अतिरिक्त कुलाल, तक्षा, अयस्कार, कर्मकार, रथकार, धनुष्कार, मूर्तिकार सुवर्णकार आदि का उल्लेख मिलता है ।[52]

पुरातात्विक एवं साहित्यिक साक्ष्यों से विदित होता है कि लगभग प्रत्येक काल में चाहे व सैन्धव सभ्यता रही हो या उत्तरवर्ती मौर्य, कुषाण, गुप्त इत्यादि

काल क्यों न रहा हो, कलाकृतियों को निर्मित करने के लिए, शिल्पियों ने एक सुनिश्चित उस स्थल का चुनाव किया जहाँ पर उनकों शिल्प निर्माण हेतु वस्तुऐं आसानी से प्राप्त हो जाती थी । तदनन्तर वह स्थल शिल्पकला केन्द्र के रूप में परिवर्तित हो जाता था । लगभग प्रत्येक काल विशेष के शिल्प कला केन्द्रों का चहुँमुखी विकास हुआ तथा वह स्थल सांस्कृतिक केन्द्र के साथ–साथ वाणिज्य एवं व्यापार का भी केन्द्र बन गया ।

पाकिस्तान के सिन्ध प्रान्त में चन्हुदड़ों[1] (1931, एन.जी. मजूमदार, 1935–अर्नेष्ट मैके) तथा लोथल (1954, रंगनाथ राव) से प्राप्त पुरावशेषों व कर्मकारों के आवासों से विदित होता है कि इन दोनों ही केन्द्रों पर शिल्पी मनके तथा मोहर निर्मित करने का कार्य वृहद मात्रा में करते थे जो शिल्पियों की कार्यशालाएँ कहलाती थी ।[2] मैके को चन्हुदड़ों के एक कमरे में बहुत–सी अर्द्ध निर्मित मनके बिखरी पड़ी प्राप्त हुई तथा इनके साथ धातु तथा पतर के हथियार सहित कई घरों में मनके निर्मित करने के लिए रखे पत्थरों के ढेर भी प्राप्त हुए । मैके द्वारा इसे निश्चिम रूप से मनका निर्माण का कारखाना स्वीकार किया गया है । अन्य अवशेषों से स्पष्ट है कि हड़प्पीय शिल्पियों ने भिन्न–भिन्न वस्तुओं से मनके का निर्माण करते थे । हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, लोथल तथा चन्हुदड़ों इत्यादि स्थलों से मिट्टी के मनके, घोघें के मनके, चूना–पत्थर, कार्नेलियन के चित्रित मनके, सोलखड़ी, गोमेद, कांचली मिट्टी, शंख, सीप, हाथी दाँत, सोना, चाँदी, तांबा इत्यादि से निर्मित मनके प्राप्त हुए है ।[3]

हड़प्पा से उच्च कोटि के शिल्प की दो मूर्तियाँ (सिर रहित)[4] धौलावीरा से प्राप्त पाषाण के सुन्दर गोल फलक, मोहनजोदड़ों से प्राप्त लगभग एक दर्जन खण्डित पाषाण मूर्तियाँ[5] सैन्धव शिल्पियों द्वारा पाषाण शिल्प का उच्च नमूना है, जो मोहनजोदड़ों की मूर्तियों में मानव सिर पर केश, अच्छी प्रकार से कढ़े हुए बनाये गये हैं और इन्हें केशपाश द्वारा बांधकर रखा गया है । आँखों में पच्चीकारी का काम भी किया गया था ।[6] ऋग्वेद के एक सूक्त में एक ही परिवार के विभन्न पेशे वालों की स्वाभाविक प्रवृत्तियों का सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है । इससे स्पष्ट है कि तत्कालीन समाज का वर्गों में विभाजन मुख्यतः सामाजिक एवं आर्थिक

संगठन की सुविधा के लिए था । उत्तरवैदिक युग तक आते–आते अनेक प्रकार के व्यवसायों व शिल्पियों का न केवल विकास हुआ, बल्कि वे सुदृढ़तापूर्वक विभिन्न वर्गों में संगठित होने लगे थे । यहाँ यह उल्लेखनीय है कि तत्कालीन समाज में शिल्प और उद्योग को आदर की दृष्टि से देखा जाता था ।[7]

पाणिनि के समय हमारे देश में विभिन्न प्रकार के कम्बलों का निर्माण होता था, विशेष रूप से शिल्पी द्वारा उत्तर पश्चिमी भारत में बने ऊनी कम्बल की मध्यप्रदेश में विशेष मांग थी । पाणिनि ने उनका उल्लेख किया है । पाणिनिकाल में शिल्पियों का एक वर्ग लोहार के रूप में दिखाई देता है जो विभिन्न प्रकार के औजारों, शस्त्रों का निर्माण करते थे ।[8] जैसे घन, हथोड़ा, हल की कुशी या फाल कुल्हाड़ी इत्यादि ।

पाणिनि ने अपने ग्रन्थ अष्टाध्याय में बताया है कि तत्कालीन समय में तक्षा या बढ़ई का काम करने वाले शिल्पियों का महत्वपूर्ण स्थान था क्योंकि ये इन शिल्पियों के द्वारा काष्ठ के राजप्रासादों, महलों का निर्माण करवाते थे । जातकों से भी इसकी पुष्टि होती है । लकड़ी का काम करने वाले शिल्पियों के गाँव में बसने का उल्लेख मिलता है । अतः हम यह कह सकते हैं कि पाणिनि के युग में शिल्पियों के कई वर्गों का अस्तित्व मिलता है । शिल्पियों के काम करने का मुख्य उद्देश्य जीविकोपार्जन करना था । पाणिनिकालीन भारतवर्ष में शिल्प भी आर्थिक दशा का सूचक था ।

ऋग्वेदिक भारत में जाति प्रथा की उपस्थिति या अनुपस्थिति के विषय में विद्वान सहमत नहीं है, ऋग्वेद के दसवें मण्डल में वर्णित 'पुरूषसूक्त' में चार जातियाँ बताई गयी है, किन्तु ऐसा लगता है कि यह बाद में जोड़ा गया है । ऋग्वेदिक समाज में बढ़ाई भी महत्वपूर्ण काम करता था, क्रीड़ा तथा युद्ध के लिये रथ बनाने का काम तथा उनकी मरम्मत करने का काम वहीं करता था । वह छकड़े भी बनाता था, अपने कार्य के लिए उनके पास कुल्हाड़ी होती थी, काटे हुए जानवरों की खाल को रंग लिया जाता था और चमड़े की लगाम, थैले, चाबुक और धनुष की रस्सी आदि बनाई जाती थी । धातु से काम करने वाले कुम्हारों

और सुनारों का भी वर्णन है बुनाई का काम आमतौर पर पुरूष ही करते थे ।[9] उत्तर वैदिक काल में क्रमशः कठोरता आने लगी थी और अब वे जाति के रूप में परिणत होने लगे थे, परन्तु इस समय भी जाति प्रथा उतनी अधिक कठोर नहीं बनी जितनी सूत्रों के काल में देखने को मिलती है । व्यवसाय अनुवांशिक होने लगे चर्मकारों, स्थकारों, धातुकारों आदि की अलग जातियाँ बन गई ।[10] इस प्रकार कई व्यवसायों का उल्लेख प्राप्त होता है जैसे धोबी, कसाई, नाई, मछुआरा, नावक, रथवान, टोकरिया और रस्से बनाने वाले इत्यादि । अग्नि–वेदी बनाने में लोग दक्ष थे, श्रेष्ठी या व्यापारी का भी उल्लेख मिलता है । उस समय लोग सोना, कांसा, लोहा, तांबा सिक्का, कलई इत्यादि धातुओं का प्रयोग करते थे ।

मौर्यकालीन भारत में कौटिल्य ने वर्णाश्रम व्यवस्था को सामाजिक संगठन का आधार माना है उसके अनुसार वर्णाश्रम व्यवस्था की रक्षा करना राजा का कर्तव्य है । धर्मशास्त्रों के अनुसार कोटिल्य ने भी चारों वर्णों के व्यवसाय निर्धारित किए किन्तु शूद्र को शिल्पकला और सेवावृत्ति के अतिरिक्त कृषि, पशुपालन और वाणिज्य से आजीविका चलाने की अनुमति दी । इन्हें सम्मिलित रूप से वार्ता कहा है । मौर्योत्तर काल में भी कारीगरी एवं शिल्प का विकास हुआ था, ईसा–पूर्व दूसरी शताब्दी के महावस्तु नामक एक बौद्ध ग्रन्थ के अनुसार राजगृह नगरी में लगभग 36 विभिन्न प्रकार के शिल्पी रहते थे, मिलिन्द पन्हों में जिन 75 विभिन्न व्यवसायों का उल्लेख है, उनमें से 60 विभिन्न प्रकार के शिल्पों से संबंधित है । मिलिन्द पन्ह में उल्लिखित व्यवसायों में से सोना, ताँबा, टिन, सीसा, पीतल, लोहा आदि आठ प्रकार की धातुओं से संबंधित है । विभिन्न शिल्पकारों में एकत्र होकर शिल्पी श्रेणियों का संगठन किया । व्यापारियों ने भी अपनी श्रेणियों का संगठन किया । श्रेणियों का उल्लेख मथुरा क्षेत्र एवं पश्चिमी दक्कन क्षेत्र में गौवर्धन नामक नगर शिल्पी श्रेणियों का एक महत्वपूर्ण केन्द्र था, ये श्रेणियाँ कभी–कभार धरोहर रखने एवं महाजन का भी कार्य करती थी ।

सातवाहन काल में समाज 4 वर्गों में विभक्त था । प्रथम वर्ग में महारथी, महाभोज व महासेनापति सम्मिलित थे । द्वितीय वर्ग में कर्मचारी और गैर कर्मचारी दोनों सम्मिलित थे । गैर कर्मचारी सदस्यों में नैगम (व्यापारी), सार्थवाह (व्यापारियों

के काफिले का प्रमुख) और श्रेष्ठिन (व्यापार निगम का प्रमुख) सम्मिलित थे । तृतीय वर्ग में लेखक (क्लर्क), वैद्य हलकीय (कृषक) सुवर्णकार (सुनार) और गंधिक (औषद्वियाँ बेचने वाला) सम्मिलित थे । चतुर्थ वर्ग में वार्धकी (बढ़ई), मालाकार (माली), लोहवणिज (लोहार) और दसक (मछियारा) सम्मिलित थे । श्रेणियाँ या शिल्प संस्थायें भी सातवाहन युग की विशेषता थी ।

गुप्तकाल में शिल्पकर्म शूद्रों के सामान्य कर्त्तव्यों में आ गया । वायु पुराण के अनुसार उसके दो प्रमुख कर्त्तव्य थे – शिल्प और भृत्ति । इस काल में शूद्र कारीगारों का महत्व बढ़ा । अमरकोष में शिल्पियों की सूची शूद्र वर्ग में है । इसमें सामान्य शिल्पियों, उनकी श्रेणी के प्रधानों, मालियों, धोबियों, कुम्हारों, जुलाहों, राजमिस्त्रियों, दर्जियों, चित्रकारों, शस्त्रकारों, चर्मकारों, लुहारों, शंख शिल्पियों स्वर्णकारों, बढ़ई, ढोल, वंशी और वीणा बजाने वालों अभिनेताओं, नर्तकों आदि की सूची दी है, जो इस बात का प्रमाण है कि शूद्र सभी तरह के शिल्पों और कलाओं का व्यवसाय करते थे ।

मध्यकालिन भारतीय शिल्प और शिल्पकारों के बारे में पूर्ण प्रकाश नहीं पड़ता, क्योंकि समकालीन इतिहासकारों को इनमें रूचि नहीं थी । परन्तु 17 वीं शताब्दी के नगर और नागरिक जीवन की कुछ जानकारी बर्नियर के वितरण से मिलती है । उसके अनुसार दिल्ली में कई बड़े–बड़े कारखाने थे, जिनमें शिल्कार कार्य करते थे । जगह–जगह विशाल कक्ष थे जहाँ पच्चीकारी करने वाले सुनार, चित्रकार, लकड़ी वार्निश करने वाले, दर्जी एवं मोची काम करते थे । ऐसा प्रतीत होता है कि ये कारखाने फिरोज तुगलक और अकबर द्वारा बनाये गये कारखानों के सदृश थे । यह सम्भव है कि वहीं दस्तकारी का काम भी होता रहा होगा पर समकालीन लेखक इस विषय में मौन है । अबुल फजल के अनुसार अकबर ने दस्तकारी की वस्तुओं से हटा दिया, जिससे शिल्पकारों को आर्थिक लाभ हो । सल्तनत काल में कपड़ा, धातु पत्थर का काम, चीनी नील और कागज के प्रमुख उद्योग थे । छोटे नगरों के उत्पादक बड़े नगरों के व्यापारियों से सम्पर्क स्थापित करते थे और देश– विदेशों में वस्तुओ को भेजने की व्यवस्था करते थे । मुहम्मद तुगलक प्रति वर्ष अभिजात वर्ग के लोगों को 4 लाख के बहुमूल्य वस्त्र वितरित

करता था, जो अधिकतर चीन, ईराक और सिकन्दरिया से मांगये जाते थे । मुहम्मद तुगलक के समय चार हजार शिल्पकार जरी के काम के लिए नियुक्त थे । जो राजमहल और अभिजात वर्ग की स्त्रियों के लिए किमखाब तैयार करते थे ।

दिल्ली के सुल्तानों को बहुमूल्य धातु के बर्तनों का बड़ा शौक था । पच्चीकारी, के कार्य में दक्ष शिल्पकार में भिन्न–भिन्न भागों में पाये जाते थे । इस उद्योग की प्रगति अकबर के समय में अधिक हुई । शिल्पकारों से विविध रंगों के दस मन के झाड़फानूस बनवाये सल्तनतकाल जो कि राजनैतिक उथल–पुथल का काल था इसकी अर्थव्यवस्था तथा शिल्प पर विपरीत प्रभाव पड़ा तथा तात्कालीन शिल्प व उद्योग का आशानुरूप विकास नहीं हो सका । यद्यपि मध्यकालीन समाज में सभी शिल्प व उद्योग उपस्थित थे, किन्तु शासकों की उदासीनता तात्कालिक राजनैतिक परिस्थितियों तथा शासकों द्वारा शिल्पों को उचित राज्याश्रय नहीं देने के कारण इनका समुचित विकास नहीं हो सका ।''

❒

सन्दर्भ –

1. *प्रभुदयाल अग्निहोत्री, पतंजलिकानी भारत वि 2019 पटना पृ 310*
2. *अर्नेष्ट मैके–चन्हुदड़ों एक्सकवेशन्स , जिल्द–1 पृ. 46, 190*
3. *ऋग्वेद – 1026.6*
4. *पाणिनिकालीन भारत वर्ष 4–4–12 (वतनादिभ्यों जीवति)*
5. *डॉ. भगवान सिंह एवं डॉ. सुल्लेरे – प्राचीन भारत का इतिहास पृ. 18*
6. *झा एवं श्रीमाली–प्राचीन भारत का इतिहास पृष्ठ–241*

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
वर्ष 22, अंक 85–86, अप्रेल–सितम्बर, 2016 पृ. 15–20 ***ISSN 0974 -1100***

भारतीय मूर्तिकला की शिल्पकला में लकुलीश

डॉ. सहदेवसिंह चौहान

जिस प्रकार वैष्णव धर्म में 24 अवतार, बौद्धों में 24 अतीत बुद्ध, वर्तमान बुद्ध एवं 24 भावी बुद्ध और जैनों में 24 तीर्थकरों की कल्पना की है । उसी तरह शिव के उपासकों ने भी शिव के कई अवतारों की कल्पना की है, परन्तु उन सब अवतारों की मूर्तियाँ नहीं मिलती है । शिव के लकुलीश (लकुटीश) अवतार की मूर्तियाँ बहुत मिलती है– विश्वकर्मावतार वास्तुशास्त्रम नामक ग्रंथ में लकुलीश मूर्ति के बारे में लिखा है –

न (ल) कुलीरामूर्ध्वमेढं, पर्मासन सुसंस्थितम् ।
दक्षिणे मातुलिंग च वामे दण्डं प्रकीर्तिम् ।।

अर्थात लकुलीश की मूर्ति उर्ध्वमेढू (उर्ध्वलिंगी) पद्मासन स्थित, दाहिने हाथ में विजोरा और बांये हाथ में दण्ड (लकुट) जिस पर से लकुलीश तथा लकुटीश नाम पड़ा, लिये होती है ।

प्राचीनकाल में पाशुपत सम्प्रदायों के लकुलीश सम्प्रदाय बहुत प्रसिद्ध था और अब तक सम्पूर्ण राजस्थान, गुतरात, मालवा, बंगाल, बिहार, उड़ीसा एवं दक्षणी राज्यों में लकुलीश की मूर्तियाँ पाई जाती है । लकुलीश की मूर्ति के सिर पर जैन तीर्थंकरों के समान केश होते हैं, जिससे कोई–कोई उसको जैन तीर्थंकर की मूर्ति मान लेते हैं, परन्तु वह तीर्थंकर की नहीं, अपितु लकुलीश की मूर्ति होती है । वह द्विभुज होती है और उसके बांये हाथ में दण्ड (लकुट) तथा दाहीनें हाथ में विजोरा होता है । लकुलीश की किसी मूर्ति के नीचे नंदी और कहीं–कहीं दोनों

तरफ एक–एक जटाधारी साधु भी बना रहता है। लकुलीश उर्ध्वरेता (जिसका वीर्य कभी स्खंलित न हुआ हो) माना जाता है । जिसका प्रतीक उर्ध्वलिंग मूर्ति पर स्पष्ट होता है ।

पाशुपत सम्प्रदाय के संस्थापक लकुलीश थे, जिन्हें शिव का 18 वां या अंतिम अवतार माना जाता है । चन्द्रगुप्त द्वितीय के मथुरा स्तम्भलेख (गुप्त सं. 61, ई. सन् 381)[1] के कपिलेश्वर और उपमितेश्वर की दो शिवलिंग मूर्तियों की स्थापना पाशुपत सम्प्रदाय के गुरू उदिताचार्य द्वारा की गई । कुशिक नाम गुरू से प्रारंभ होने वाली आचार्य परम्परा में उदिताचार्य को दसवां आचार्य माना गया है । डी.आर.डी. भण्डारकर[2] ने कुशिक का अभिज्ञान शिव के परम् शिष्य लकुलीश के चार प्रधान शिष्यों में से एक के साथ किया है । कुशिक के अतिरिक्त अन्य शिष्य–मैत्रय, गार्ग्य और कौरूप्य ने पाशुपत सम्प्रदाय में चार विभिन्न शाखाएँ स्थापित की । यदि उदिताचार्य से पूर्व के दस आचार्यों में से प्रत्येक के लिए 25 वर्ष का समय निर्धारित किया जावे तो पाशुपत सम्प्रदाय के प्रवर्तक लकुलीश का समय दूसरी शती ई. का पूर्वार्द्ध माना जा सकता है । इससे ज्ञात होता है, कि पाशुपत सम्प्रदाय द्वितीय शती ई. के पूर्वार्द्ध में सुव्यवस्थित हो चुका था और गुप्तकाल (381 ई.) में आते–आते विभिन्न शाखाएँ भी विकसित हो गई थी ।

उदयपुर (राजस्थान) से लगभग 25 कि.मी. उत्तर दिशा में एकलिंगजी मन्दिर के समीप एक अभिलेख[3] में उल्लेख है कि भृगु की आराधना से प्रसन्न होकर शिव ने भृगुकच्छ देश में एक लकुटधारी पुरूष के रूप में जन्म लिया । इसी लेख में पाशुपत योग के ज्ञाता भस्म वल्कल और जटाधारी कुशिक आदि मुनियों का भी वर्णन है । गुजरात से प्राप्त एक अभिलेख[4] में कहा गया है कि शिव भट्टारक लकुलीश के रूप में अवतरित हुए और लाट देश के कारोहण (कारवन–बड़ोदा–राज्य) स्थान में रहे । यहां लकुलीश का एक मन्दिर है, इससे इसीको कायावरोहरण मान लिया गया है । जब कि मालवा में भी उज्जैन के निकट आज भी कायावरोहण नामक गांव मौजूद है और पंचकोशी की यात्र के समय मार्ग में आता है । इससे प्रकट होता है कि कभी उज्ययिनी भी लकुलीशों का मुख्य केन्द्र रही होगी, क्योंकि यह सम्प्रदाय मालवा में दीर्घकाल तक प्रचिलित

रहा । कर्नाटक प्रदेश के सोर तालुक से हेमावती से प्राप्त 943 ई. के अभिलेख[5] से ज्ञात होता है कि लकुलीश अपने नाम और सिद्धांतों की रक्षा के लिए मुनिनाथ चिल्लुक के रूप में उत्पन्न हुए । शिल्पशास्त्रों के अनुसार लकुलीश की प्रतिमा पद्मासन मुद्रा में बैठी हुई उर्ध्वरेतस, हाथों में दण्ड व बीजपूरक धारण किये हुए होना चाहिए । **'योगिनो ब्राम्हणा वेदपारणा उर्ध्वरेतसः'** उनके घुटनों पर योगपट्ट होना चाहिए, जिससे प्रतीत हो कि लकुलीश ध्यान मग्न है । इस सम्प्रदाय के मानने वाले पाशुपत कनफटे साधु होते थे ।

ऐसा भी कहा जाता है कि भगवान श्रीकृष्ण ने जिस समय वासुदेव रूप में अवतार लिया था, ठीक उसी समय शिवजी कायावरोहण नामक स्थान पर लकुलीश रूप में हाथ में दण्ड लेकर अविर्भूत हुए थे । शमशान स्थित एक शव में उनका आर्विभाव हुआ था । शव चेतन होकर उठ बैठा और पाशुपत धर्म के प्रचार में तत्पर हुआ ।

उक्त तथ्यों से यह तो स्पष्ट है कि लकुलीश नामक आचार्य ने भारत के कारोहण तीर्थ में पाशुपत मत की स्थापना की । इस सम्प्रदाय की मान्यता इतनी बढ़ी कि लकुलीश शिव का प्रतीक हो गया । लकुलीश की प्राचीनतम् प्रतिमा कारोहण से ही प्राप्त हुई है और यह कुषाण कालीन है । इस तरह कारोहण को लकुलीश सम्प्रदाय का उत्पत्ति स्थल कहा जाता है ।[6] लिंगपुराण[7] व वायुपुराण[8] में लकुलीश को शिव का 18 वां अवतार कहा गया है । कूर्म व शिवपुराण में लकुलीश के अवतार और स्वरूप का विस्तृत वर्णन मिलता है ।[9]

अब तक की ज्ञात प्रतिमाओं में राजस्थान के नांदगाव में 2 री शताब्दी के शिवलिंग पर अंकित लकुलीश को प्राचीनतम माना जाता है ।[10] यहां के उष्णीयधारी शिव को आसन पर दोनों पैर रखे बैठा दिखलाया गया है । लकुलीश की एक गुप्त कालीन मूर्ति मथुरा संग्रहालय में है । यहां वे द्विभुज है, बांई कुहनी पर दण्ड संभाला गया है और दोनों हाथ व्याख्यान मुद्रा में हैं । घुटनों पर योगपट्ट भी दिखलाई पड़ता है । यह मूर्ति 7 वीं शती की ज्ञात होती है । इसी काल में खड़े लकुलीश के भी दर्शन होते हैं । मथुरा संग्रहालय में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय का एक अभिलिखित स्तम्भ है, जिसपर नग्न और मुक्तेश दण्ड धारी लकुलीश दिखाई पड़ते हैं । अहिछत्रा के मृत फलकों में भी डॉ. अग्रवाल ने लकुलीश को पहचानने का यत्न किया है ।[11]

दण्ड और उर्ध्वलिंग लकुलीश के प्रतीक माने जाते हैं, किन्तु प्रारंभिक काल की जिन मूर्तियों का अभी हम उल्लेख कर आये हैं, उनमें समान रूप से ये दोनों प्रतीक नहीं मिलते । लकुलीश नाम से शिव के इस ध्यान में दण्ड का होना अपरिहार्य लगता है । नांदगांव की मूर्ति में दण्ड के विषय में कुछ नहीं कह सकते । गुप्त कालीन मथुरा मूर्तियों में दण्ड तो है पर एक में (सं. सं. 29, 1931) उर्ध्वलिंग नहीं है । लगता है कि ढ़लते गुप्तकाल में ये दोनों प्रतीक एक साथ आ गये । यह भी संभव है कि लकुलीश का लगुड गांधार शिव की गदा का परिवर्धित रूप हो, इस प्रसंग में पठनीय हैं ।[12]

वाराणसी के तिलक भाण्डेश्वर के मंदिर में स्थित विशाल मूर्ति, जिसमें विशाल वृक्ष के नीचे उर्ध्वलिंगी कुंचित केशधारी शिव दण्ड के साथ व्याख्यान मुद्रा में बैठे हैं । योगपट्ट भी बंधा हुआ है, तथा अगल–बगल चार शिष्य भी विराजमान हैं । ये चार शिष्य कदाचित चार शैव आचार्य कुशिक, गार्ग्य, मैत्रय और कोरूप्य हों जिनका उल्लेख पुराणों और शिलालेखों में आता है ।[13] ये चारों आचार्य लकुलीश के शिष्य है । उक्त मूर्ति 6 टी शताब्दी की मानी जाती है ।

लकुलीश की अधिकतर मूर्तियाँ पूर्व में उड़ीसा और पश्चिम में गुजरात तथा काठियावाड़ के भू–भाग में मिली है ।[14] मन्दसौर (दशपुर) की शिवना नदी से प्राप्त द्विलिंगी लकुलीश प्रतिमा भारतीय मूर्तिकला के लिए अनुपम उदाहरण और कला की दुर्लभ धरोहर है । इस मूर्ति का माध्यम हल्का काला पत्थर है । यह मूर्ति औलिकर समय (6^{th} A.D.) की है । इसके दोनों हाथ और दोनों पैर भग्न है । जटाधर के स्थान पर घुंघराली केश राशि है कंधे पर यज्ञोपवीत व कानों में कर्ण कुण्डल व गले में एकावली हार है तथा कमर में धोती का ऐंडा हुआ पट्टा है ।[16] इसके अतिरिक्त हिंगलाजगढ़ (मंदसौर) की लकुलीश प्रतिमाएँ कुछ द्विभुज हैं और कुछ चतुर्भुज । शीश पर घुंघराली केश राशि नागबंध से वेष्ठित आकर्षक जटाजूट, हाथों में दण्ड और बीज पूरक के साथ नाग, त्रिशुल तथा पुस्तक का भी अंकन किया गया है । कुछ प्रतिमाएँ निरावरण योगी सी तो कुछ आभूषणों से अलंकृत । एक प्रतिमा में उर्ध्व लिंग के चारों और योनिपट्ट रूप जलाधारी का भी आलेखन है ।

बैजनाथ (रीवा) के मन्दिर के द्वार की शिल्प रचना नवीं शती की है । इसके तोरण के शिरदल पर नवग्रहों की मूर्तियों के अतिरिक्त मध्य में लकुलीश

एवं पार्श्वों में ब्रम्हा एवं विष्णु का अंकन है ।[16] शिव के अनेक रूपों का अंकन भुवनेश्वर के मन्दिरों में भी देखने को मिलता है । उड़ीसा में भौमकर वंश के उपरांत 950 ई. में सोमंवशियों की स्थापना जनमेजय के समय में हुई और इनका महत्वपूर्ण शासन 1065 ई. तक रहा । इन सोमवंश्यिों के शासनकाल में भुवनेश्वर के मुक्तेश्वर मन्दिर (960–975 ई.) के विभिन्न भागों पर अन्य मूर्तियों के साथ लकुलीश की मूर्ति अंकित है ।[17] किन्तु यहां पाशुपत और वज्रयान (बौद्ध) के सिद्धांतों में सामंजस्य स्थापित हुआ हो ऐसा देखने को मिलता है । इस काल में लकुलीश पाशुपत धर्म का स्वरूप पर्याप्त बदला होगा । लकुलीश की अनेक मूर्तियाँ परशुरामेश्वर एवं बैताल देउल से ज्ञात है । किन्तु इस संबंध में उल्लेखनीय समन्वयवादी मूर्तियाँ हैं । सौरों से प्राप्त शिवलिंग और शिशिरेश्वर मन्दिर की लकुलीश मूर्ति । सौरों की इस शिवलिंग मूर्ति पर बौद्धमंत्र **'ये धर्म हेतु प्रभवा''** अभिलिखित है । उसी भांति लकुलीश का अंकन बुद्ध की तरह धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रा में है । परशुरामेश्वर मंदिर से प्राप्त तीन लकुलीश मूर्तियों के आधार पर यह अनुमान सम्भव है कि मन्दिर का निर्माण लकुलीश से संबंधित पाशुपत धर्म के प्रभाव में हुआ ।[18]

लकुलीश के मंदिर कई जगह मिलते हैं । उदयपुरा राज्य में एकलिंगजी के मंदिर के पास (एकलिंगजी मंदिर से दक्षिण में कुछ ऊँचाई पर यहां के मठाधिपति ने) वि.स. 1028 (ई. सन् 971) का बना हुआ और कोटा राज्य के प्रसिद्ध केवालजी (कपालेश्वर मंदिर) से लगभग 1 मील पर जयपुर राज्य की सीमा में आधा गिरा हुआ एक सुविशाल मंदिर लकुलीश के माने जाते हैं । एकलिंगजी तथा राजस्थान के अन्य मंदिरों के मठाधिपति कुशिक की शिष्य परम्परा में माने जाते हैं । ये साधु कान फड़वाते, सिर पर जटाजूट रखते और शरीर पर भस्म लगाते थे । ये विवाह नहीं करते थे, किन्तु चेले अवश्य बनाते थे ।

राजस्थान के शिव भक्त राजा अपने इष्टदेव शिव के बड़े–बड़े मंदिर बनवाते थे और उनके साथ मठ भी होते थे । ये मठ बहुधा लकुलीश सम्प्रदाय के साधुओं के अधिकार में होते थे । ये साधु राजाओं के गुरू माने जाते थे । एकलिंगजी तथा मैनाल आदि के मठाधीश भी यही लोग थे । इन मंदिरों के द्वार पर लकुलीश मूर्ति रहती थी । इन मंदिरों और मठों के निर्वाह के लिए बड़ी–बड़ी जागीरें दी जाती थी । वर्तमान काल के 'नाथ' लोग विशेषतः उसी सम्प्रदाय से निकले हुए है । परन्तु अब वे लोग लकुलीश का नाम तक नहीं जानते ।[19]

❐

सन्दर्भ –

1- *D.C. Sarcar, inscription bearing on Indian History and Civilization, 2nd Ed. Calcutta, 1965, Vol. 1,PP.277-78; Ecpigraphia India, Vol 21, P.4*

2- *Epigraphia Indica. Vol. 21, PP. 4-8 Banerjee, J.N., The Development of `Hidu Iconograph, 2nd Ed. Calcutta 1956, P.450*

3. *Journal of the Bombay branch of the Royal Asiatic Socity, Vol. 22, P.151*

4. *Epigraphia Indica, Vol. 1, P.281*

5. *Journal of the Bombay branch of the Royal Asiatic Socity, Vol. 22, P.151-153*

6. *H.D. Sankliya, Archaeaology fo Gujarat, Bombay, 1991, P.44; V.S. Pathak, Shiv Cultes in Northern India from Iscrpition, Varansi 1960 P.3*

7. लिंगपुराण *2321; Shiv Cultes in Northern India from Inscription, Aransi 1960, P.7*

8. वायुपुराण, 24—29, कलकत्ता 1800, *Shiv Cultes in Northern India from Inscription Varansi 1960, P.7*

9. *T.A.G. Rao, Elements of Hindu Iconography, Delhi 1986, Vol.1, PP 20-21*

10. *R.C. Agrwal, Chaturmukha Shivlinga from Nand near Pushkar, Rajsthan, Vranasi 1968-69, Vol.XIV, no 3-4, P.391*

11. *V.S. Agrwal, T erracotta figurines of Ahichechhatra, Ancient India. 1948, Vol. 4, PP. 169*

12. *V.S. Pathak, Shivisam in Early Mediaeval India etc. Bharti, Varansi, 1950-60, No 3, PP. 1-57; R.C. Agrawal, TwoStanding Lakulisa Sculptures from Rajsthan, Journal of the oriental institute, 1965, Vol. XIV, No 3-4, P. 391*

13. रा.गो. भण्डारकर, वैष्णव, शैव और अन्य धार्मित मत (हिन्दी अनु.) वाराणसीए 1967, पृ. 133.134

14. *J.N. Banerjee, Devlopment of Hindu Iconograph 2nd Ed., Calcutta, 1956, P.465*

15. सहदेवसिंह चौहान, अष्टमुखी, दिल्ली, 1978 पृ.235

16. *K.C. Fanigrahi Archaedological Remains of Ghubaneshwar, 1960. PP. 250-51.*

17. *V.S. Pathak, Ekram Bhubaneshwar in Inscription the Orissa Historical Journal, 1958, Vol 7 (1), P.49*

18. गौरीशंकर ओझा, हीराचंद, व्यक्तित्व एवं कृतित्व (लेखक मोहनलाल पाटनी) उदयपुर 1988 पृ. 66—67

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
वर्ष 22, अंक 85–86, अप्रेल–सितम्बर, 2016 पृ. 21–28 ***ISSN 0974 -1100***

भारत के इतिहास सृजन में शिल्पियों का योगदान

डॉ. शेलजा साबले

शिल्पकला ''कला'' का वह रूप है जो त्रिविमिय होती है । भारत के वास्तुशिल्प, मूर्ति शिल्प, हस्तशिल्प, काष्ठशिल्प का भारतीय सभ्यता के इतिहास में बहुत गहरा संबंध है । भारत की सिंधुघाटी की सभ्यता मोहन जोदड़ों के बड़े–बड़े जल कुंड प्राचीन मूर्तिकला का एक श्रेष्ठ उदाहरण है । दक्षिण मंदिरों जैसे कांजीपुरम्, मदुरै, श्रीरंगम और रामेश्वरम् उत्तर वाराणसी के मंदिरों की नक्काशी उस उत्कृष्ट कला के चिर प्रचलित उदाहरण है जो भारत में समृद्ध हुई है । केवल यही नहीं मध्यप्रदेश के खजुराहों मंदिर और उड़ीसा के सूर्य मंदिर उत्कृष्ट कला का जीता जागतारूप है । सांची स्तूप की मूर्तिकला भी बहुत भव्य है ।

इतिहास में कलाखंडों के समृद्ध साक्ष संकेत करते हैं कि भारतीय शिल्पकला को एक समय में पुरे विश्व में उच्चतम स्थान प्राप्त था ।

अजंता की गुफाएँ, एलिफेंटा की गुफा हैं, एलोरा की गुफाएँ कुतुबमीनार छत्रपति शिवाजी टर्मिनस, जंतर–मंतर जयपुर, ताजमहल बुलंद दरवाजा, चंपानेर, पावागढ़ पुरातात्विक उद्यान, बृहदेश्वर मंदिर भीम बेटका गुफाएँ, महाबली पुरम, लालकिला आगरा, सूर्यमंदिर कोणार्क, बाघ की गुफाएँ सॉची, हम्पी हुमायूँ का मकबरा, पीतल खोरा की गुफा काजीरंगा, राष्ट्रीय उद्यान सुंदरवन रानी की वाव ग्रेट हिमालयन नेशनल पार्क ये सारे स्थल विश्व की विरासत है ।

शिल्पकला की प्राचीनतम् के दिग्दर्शन जहाँ पुरातात्विक साक्ष्यों के माध्यम से होता है । वहीं समकालीन भारतीय शिल्प ग्रंथो से भी कला की प्राचीनता ज्ञात

होती है । शती के अंतिम चरण से इनकी विशिष्टता स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगती है । यहॉ के ग्यारसपुर बड़ोद–पठारी प्रमुख मूर्ति शिल्प के केन्द्र रहे हैं । ब्राम्हण, बौद्ध, जैन तथा अन्य देव–देवी की प्रतिमाओं के निर्माण से इस काल में धार्मिक समभाव की भावना परिलक्षित होती है । शिव की लिंग एवं मानवीय दोनों रूप की प्रतिमाएं निर्मित हुई । विष्णु सम्प्रदाय की दशावतार तथा स्वतंत्र प्रतिमाए भी बनी । लक्ष्मीनारायण, कृष्ण–लीला, शक्त मूर्तियों में मातृकाओं का अंकन प्रतीहार कला में दृष्टिगत है । इसके साथ ही महिषमर्दिनी और चामुण्डा का अंकन हुआ । सूर्य, रेवन्त, नवग्रहों आदि का अंकन है । यक्षियों में चक्रेश्वरी, अम्बिका आदि मूर्तियॉ भी बनी । साम्प्रदायिक सद्भाव का अभाव कलाकृतियों के माध्यम से व्यक्त होता है । प्रतीहार कालीन कला में सौन्दर्य अनुपातिकला, मध्ययुगीन तत्वों का प्रभाव, भाव–अभिव्यंजना, मूर्तिसज्जा और शिल्प परम्परा, नारी अंकन, पर्यावरण की झलक स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होती है । प्रतीहार कला शैली में लोकपक्ष की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है । ग्यारसपुर की अप्रतिम यक्षी मूर्ति के लिए भारतीय कला इतिहास में प्रख्यात है । अतः कला के विकास में राजकीय संरक्षण के साथ समाज के अन्य वर्गों और शिल्पियों का महत्वपूर्ण योगदान है ।

शिल्पकला के प्राचीनता की दृष्टिकोण से परमार काल स्वर्णिम काल रहा है । इस राजवंश के प्रतापी शासक मुन्ज और भोज स्वयं विद्वान तथा कला प्रेमी थे, जिन्होंने मूर्तिशिल्प को पर्याप्त संरक्षण प्रदान किया । पूर्वी मालवा परिक्षेत्र के प्रत्येक नगरों में इस काल की कला को देखा जा सकता है । जिसमें प्रमुख रूप से विदिशा, ग्यारसपुर, बडोह–पठारी, आशापुरी, एरण, भोजपुर इत्यादि । परमार कलाकृतियों में शैव और शाक्त मूर्तियों की प्रधानता रही है । यह पूर्ण विकसित मध्यकालीन कला थी, आकृतियों के हल्के शरीर रचना किन्तु आकर्षक भंगिमाओं में सूक्ष्मता से उकेरे गये विभिन्न आभूषणों से सज्जित दिखाया गया है ।

प्रतिमाओं में सामाजिक एवं धार्मिक दोनों प्रकार के रूप विद्यमान है, ये आकृतियाँ विवेच्य क्षेत्र के अनेक कला प्रधान केन्द्रों में निर्मित हुई है । पूर्वीमाला परिक्षेत्र में सामाजिक व्यवस्था प्राचीन वैदिक परम्पराओं पर आधारित रही है । समाज का विभाजन पूर्ववत वर्णाश्रम व्यवस्था के आधार पर चार वर्गों में विभक्त

यथा–ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र । यद्यपि प्रतिमाएँ सामाजिक संस्थाओं को पूर्णरूपेण व्यक्त करने में सक्षम नहीं होती, फिर भी साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर सामाजिक जीवन के कतिपय पक्ष उद्घाटित होते हैं । चार वर्णों की विचारधारा प्रतिमाओं के अवलोकन से स्पष्ट होती है । एक मुण्डित सिर उपासक शिखर युक्त होना, ब्राम्हण वर्ग होने की पुष्टि करता है । देव–प्रतिमाओं के समक्ष पूजा–पाठ कर आजीविका चलाने वाले ब्राम्हणों की जानकारी का भी अनुमान लगा सकते हैं । सॉची स्तूप के तोरण द्वारों में उपदेश देते आचार्य का उत्कीर्णाकन समाज में शिक्षा देने की पुष्टि करता है । कला में विभिन्न प्रकार के अस्त्र–शस्त्र युक्त सैनिक, राजाओं की मूर्तियाँ मिलना क्षत्रिय वर्ग की पुष्टि करता है । बड़ोह से धनुष धारी राम की प्रतिमा मिलना, वैदिक परम्परा का निर्वाहन है । वैश्यवर्ग का कर्त्तव्य कृषि, पशुपालन, वाणिज्य, व्यवसाय था । प्रतिमा में उत्कीर्ण विविध हल, पालतु पशु आदि का उत्कीर्णांकन क्षेत्र में वैश्य वर्ग होने की पुष्टि करता है । शूद्र वर्ग को प्रतिनिधित्व करने वाली मूर्तियाँ भार वाहक श्रमिकों, सपत्निक शिल्पि, वस्त्राभूषण, बोझा ढोने वाली, नर्तक, वादक, लोहार, चर्मकार, स्वर्णकार, वंशकार आदि जातियों के अस्तित्व की जानकारी प्राप्त होती है ।

आश्रम व्यवस्था के अंतर्गत यज्ञोपवीत धारी मूर्तियाँ, ऋषि व ब्रम्हा, सरस्वती के हाथों में प्रदर्शित पुस्तक, ब्रम्हचर्य आश्रम की जानकारी देती है । युगल दम्पत्ति देव व सामान्य जन की मूर्तियों मिथुन आदि प्रतिमाऐं वानप्रस्थ, सन्यास की जानकारी प्रदान करती है । सॉची के तोरण द्वारों में राजारानी तथा अन्य जीवन के विविध पक्षों को उद्भार्षित करने वाली आकृतियों का उत्कीर्णाकन है । समाज में सोलह संस्कारों की मान्यता प्रचलन में रही हैं मूर्तियों में केवल कर्णवेध, उपनयन, मुण्डन और विवाह की ही परोक्ष जानकारी मिलती है । आज तक इसी रूप में प्रमुखता रखती है । कुल मिलाकर हम मध्यकालीन मध्यभारत में जो नगरीकरण की प्रक्रिया रही, उसे दो भागों में विभक्त कर देख सकते हैं –

ग्वालियर–भदावर क्षेत्र में ग्वालियर, भिण्ड, श्योपुर, शिवपुरी आदि नगरों का नागरीकरण की प्रक्रियां में ये नगर विकसित होते रहे ।

मालवा क्षेत्र में– उज्जैन, मंदसौर, धार–माण्डव, रतलाम, विदिशा, नीमच, शाजापुर, राजगढ़, देवास, इंदौर, भोपाल, रायसेन आदि क्षेत्र रहे ।

मध्यकालीन शिल्प–केन्द्र :–

मध्यकालीन मध्यभारत में विभिन्न प्रकार के शिल्पों और उनसे संबंधित व्यापार–केन्द्रों एवं विपणनों का अभाव नहीं रहा है स्पष्ट है ऐसे केन्द्र स्थापत्य–कला से भी जुड़े हैं, जहाँ कच्चे माल के गोदाम होते थे, और उन्हें पक्का बनाने के कुटीर उद्योग भी होते थे । उनके विक्रय–केन्द्र भी होते थे और उनसे जुड़े गमगागमन के साधन भी । दुर्भाग्य से इन केन्द्रों से संबंधित स्थापत्य अब कहीं देखने में नहीं आता, किन्तु सम्यक् अध्ययन के बाद इन केन्द्रों के स्थलों का परिज्ञान हमें मिल जाता है । कहना न होगा कि ऐसे स्थल या तो राजकीय केन्द्र रहे या व्यापारिक या प्रशासकीय । ग्वालियर–भदावर क्षेत्र में ग्वालियर पत्थर पर नक्श खोदने का प्रमुख केन्द्र था जो यहाँ की स्थापत्य–कला में दिखाई देती है । यहां चितोरा ओली और कसरा ओली जैसी बस्तियाँ समृद्ध शिल्प परम्परा की मिसाल रही है । इसके अतिरिक्त श्यौपुर, गोहद, भिण्ड, अटेर, मुरैना, सबलगढ़, भितरवार, पिछोर, गुना, सीपरी, चंदेरी आदि प्रमुख शिल्प–केन्द्र रहे हैं। इन स्थानों के अलावा भी कई गांव–कस्बों में छोटे–छोटे शिल्प–केन्द रहे जो कुटीर उद्योग के रूप में महत्व पाते रहे और व्यापारिक–केन्द्र से जुड़ते रहे । मालवा में इन स्थलों में माण्डव, धार, महेश्वर, कसरावद, खरगोन, सरदापुर, धामनौद थे ।

ग्रामीण वास्तु–शिल्प –

मध्यभारत की प्रकृति प्रारंभ से ही समृद्धशाली रही है इसलिए यहॉ के ग्रामीणजन में विविध प्रकार के शिल्प विकसित हुए हैं । इनमें माटी–शिल्प, कास्य–शिल्प, काव्य–निर्माण शिल्प, पाषाण–शिल्प, बांस–शिल्प आदि मुख्य है । इनका कुछ विवरण इस प्रकार है :–

माटी–शिल्प – माटी शिल्प की दृष्टि से मध्यभारत अत्यंत सम्पन्न रहा । यहॉ मिट्टी के कई प्रकार के बर्तन–घड़े, कुंडे, गमले आदि गृह–उपयोगी होते थे । तरह–तरह की शिल्प–मूर्तियां खिलौने, दीपक, हुक्के, चिलम, ढक्कन जैसी वस्तुऍ भी बनाई जाती थी । मध्य काल में पत्थर के चाक पर कार्य किया जाता था और आज भी प्राचीन क्षेत्रों में इसी प्रकार के चाक का प्रयोग माटी–शिल्प के लिए किया जाता है ।

काष्ठ–शिल्प – इस शिल्प की दृष्टि से मध्यभारत क्षेत्र के ग्राम विशेष उल्लेखनीय है । काष्ठ शिल्प को मुख्यतः चार भागों में देखा जा सकता है ।

पहला–कृषि–उपकरण वाले हल, डोरा, बैलगाड़ी औजारों के हत्थे आदि । दूसरा–घरेलू उपकरण । इसमें गमला, बेलन, बिलाई, पाटले आदि । तीसरा है– मूर्तियाँ, खिलौने आदि तथा चौथे रूप के निर्माण में लगने वाले उपकरण, जैसे खम्बे, म्याल, चौखट, किंवाड के पल्ले आदि । इन सबके लिए अलग–अलग लकड़ी का प्रयोग किया जाता रहा । इन में शीषम, आम, बबूल, सागौन, बियां, बांस, साल, जामुन आदि प्रमुख है ।

गृह निर्माण–शिल्प – ग्रामों में गृह–निर्माण शिल्प अत्यंत महत्वपूर्ण है । गांव में प्रायः सभी छोटे–बड़े कस्बों में गारे के घर बनाने का चलन रहा है । गारे की दीवारें लकड़ी की म्याल और ऊपर छप्पर, कवेलू या ओरा बनाया जाता है । घर–बनाने में गारे में गन्ने के पत्तों, सूकना और कॉस का प्रयोग मजबूती के लिए किया जाता है । घर बनाने में पहले लकड़ी के खम्बे खड़े किये जाते हैं । उसके बाद आड़ी लकडियाँ लगा कर घर का ढाँचा खड़ा किया जाता है और उस ढाँचे के पास बाहरी दीवारें गारे से बनाई जाती है तथा बीच–बीच की अथवा ऊपरी मंजिल की दीवारे बांस तथा तूअर की संटियों पर गारे लीपन के मिश्रण से बनती है, ताकि वजन में हल्की रहे । ऐसे मकान बनाये जाने का कारण पूर्णतः वैज्ञानिक है । ऐसे मकान भूकम्प में प्रायः नहीं गिरते और केवल मालवा में ही बनते रहे । ओरा बनाने के लिए दीवारों का पाट की जगह खजूर के पेड़ों का उपयोग होता हैं । ओरों के बने हुए घर वातानुकूलन वाले होते थे जो गर्मी में ठंडे, ठंड में गर्म और बरसात में वाटरप्रुफ होते थे । इसमें छत पर विषेश सफेद मिट्टी का उपयोग होता है । गारे की दीवारें बनाने वाले लोग खारोल कहलाते हैं । गृह–निर्माण में बबूल, आम, सागौन, शीशम, खजूर, खांकरा आदि लकड़ी का प्रयोग होता है ।

पाषाण–शिल्प – यह शिल्प अतिप्राचीन है । ग्रामों में पत्थरों से अनेक वस्तूऐं बनाई जाती है । मूर्तियॉ तो मुख्य है ही, साथ ही घरेलू उपयोग की पट्टी, खरल–बत्ते, सिल्ला–लोढ़ी, ओखली, चूना–पिसाई घट्टे तथा गृह–निर्माण के खंभ–आधार बनते रहे । मालवा के उत्तर–पश्चिमी क्षेत्रों में पाषाण–शिल्प उन्नत रहा है । भवन, महल और मंदिरों के आधार पर स्तम्भ, मेहराब, शिखर आदि कलात्मक रूप में बनते रहे हैं ।

बांस–शिल्प – बांस शिल्प भी मध्यभारत क्षेत्र के ग्रामीण अंचलों में महत्वपूर्ण स्थान का अधिकारी है । बांस को चीर कर उसकी चिपटों से चिक, खस की

टाकिया, चटाई, टोकरे, पंखे तथा खिलौने आदि बनते हैं । इनमें उपर्युक्त रंगों के उपयोग की कलात्मकता अनूठी होती है ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि ग्राम–शिल्प की दृष्टि से मध्यकालीन क्षेत्र अत्यन्त समृद्धशाली रहा है। परम्परागत इन सभी शिल्पों में प्रकृतियां स्थानीयता, वैज्ञानिकता और मानीवय भावनाओं का समुचित सामंजस्य हुआ है ।

धार्मिक निर्माण केन्द्र – कई नगरों, कस्बों और तीर्थस्थलों पर राजा, राजकीय, सदस्य, श्रेष्ठी और सम्पन्न लोग कुछ ऐसे निर्माण करवाते रहे हैं, जो गौशालाओं अन्नक्षेत्रों आदि के रूप में सुरक्षित रखे जाते रहे । विभिन्न परमार अभिलेखों से इन स्थलों के बारे में छुटपुट जानकारी मिल जाती है । कई जैन ग्रंथ भी एतद् विषयक विदर्भ देते हैं । स्थलों के अवशेष अब प्राप्त नहीं होते, किन्तु 18 वीं सदी में इंदौर की धर्मनिष्ठ महारानी श्रीमंत अहिल्याबाई होलकर ने तो ऐसे निर्माणों की धूम मचाई थी ।

महाराष्ट्र में प्रत्येक मराठा कुटुम्ब का एक कुल–देवता होता है, जो दावेदार मालवा में आये और जिनका मूल निवास देश में था । वे देवस्थ क्षत्रिय कहलाते थे मध्य भारत में आये अधिकांश इन मराठा क्षत्रियों का कुल–देवता जेजुरीका मल्हार या खंडोबा था ।

भगवान मार्तण्ड–मल्हारी को शिव का अवतार माना गया है । मणिमल्ल नामक राक्षस का नाश करने के लिए उन्होंने अवतार लिया था । कहा गया है कि होलकर सिंधिया और पंवार मल्हारी मार्तण्ड को कुल–देवता मानते हैं । विभिन्न पत्र तथा मंदिर अभिलेख इसकी पुष्टि करते हैं । होल्कर राज्य के सिक्कों पर ये शब्द अंकित मिलते हैं –

''म्हालसाकांत चरणी तत्पर खंडोजी सुत मल्हारजी होलकर पवारों के पत्र–व्यवहारों में तो– ''श्री मर्तण्ड या म्हालसाकात प्रसन्न भी लिखा जाता था । इन बातों से सिद्ध होता है कि मध्यभारत के मराठों ने इस परिपाटी को जीवित रखा था ।

यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि होलकर राजवंश शैव मत का अनुयायी रहा, इसलिये यह स्वाभाविक हैं कि उनका झुकाव शिव की ओर हो, इसी कारण शिव–मंदिरों की ओर उनका ध्यान अधिक गया ।

यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि होलकर राजवंश शैव मत का अनुयायी रहा, इसलिये यह स्वाभाविक है कि उनका झुकाव भगवान शिव की ओर हो, इसी कारण शिव–मंदिरों की ओर उनका ध्यान अधिक गया ।

अहिल्याबाई ने भी समूचे भारत के प्रमुख शैव–स्थलों पर धार्मिक कार्य सम्पन्न करवाये । द्वादश ज्यातिर्लिंग के श्री सोमनाथ, श्री मल्लिकार्जुन, श्री ओंकारेश्वर, श्री बैजनाथ, श्री नागनाथ, श्री विश्वनाथ, श्री त्रिम्बकेश्वर, श्री घृष्णेश्वर, श्री दौत्र गोकर्ण, श्री महाकालेश्वर, श्री रामेश्वर, श्री भीमाशंकर के इन स्थलों पर धर्मार्थ कार्य किए जिसमें मंदिरों का जीर्णोद्धार एवं धर्मशालाऐं, कुँए, बावड़ी, अन्नक्षेत्र एवं मंदिरों का निर्माण इत्यादि कार्य हुए हैं ।

12 ज्योतिर्लिंगों के अतिरिक्त ''सत्पपुरी'' में भी अहिल्याबाई द्वारा धार्मिक निर्माण सम्पन्न करवाये गये । इन सप्तपुरियों में मालवा के अंवतिका में एकाधिक मंदिर, धाट, कुंड और धर्मशाला निर्मित करवाये । देश के चारों धाम यथा–बद्रीनाथ, द्वारका, रामेश्वर व जगन्नाथपुरी में भी अहिल्याबाई ने मंदिरों, अन्नछत्रों, कुओं व धर्मशालाओं का निर्माण्या करवाया । प्राचीन भारतीयता का इतिहास राजनीतिक का एक अंग रहा है । अहिल्याबाई द्वारा किये गये कार्य यह सिद्ध करते हैं कि उन्होंने इस अंग का यथाशक्ति पालन करते हुए उसे पुनर्जीवित करने का प्रयत्न भी किया । अहिल्याबाई के समय महेश्वर होल्कर राज्य की राजधानी थी । अहिल्याबाई द्वारा वहॉ निम्न मंदिरों का निर्माण तथा जीर्णोद्धार करवाया गया ।

देश के किसी भी कौने में जाने पर अहिल्याबाई द्वारा बनवाये गये होलकरों का वाड़ा, अन्नक्षेत्र, सदावर्त आदि देखने को मिलते हैं । बनारस गंगा के दशावश्वमेघ घाट कर होलकरों का विशाल बाड़ा है । यहां यात्रियों को रहने की व्यवस्था आज भी है। प्रयाग, पुरी, नाशिक, पंढरपुर, परली, पुष्कर, पेंठण, मथुरा, त्रिम्बकेश्वर, रामेश्वर, घृष्णेश्वर, गया, अयोध्या, अमरकंटक, सोमनाथ, बिठुर, कायगांव आदि स्थानों पर घाट, धर्मशालाऐं, आरोग्यशालाऐं, रास्ते, अन्नक्षेत्र, सदावर्त की व्यवस्था की गई थी ।

आज इन स्थानों के रख–रखाव और व्यवस्था के लिये ट्रस्ट बना दिया गया है जो इन सभी स्थानों की देखभाल करता है ।

धार्मिक–कार्यो के लिये वह क्षेत्रीयता से ऊपर उठ कर संपूर्ण भारत को एक समझती थी । उनके द्वारा चलाया हुआ धार्मिक अभियान सतत् चलता रहा,

मंदिरों का निर्माण होता रहा और धार्मिक संस्थाऐं और लोकोपयोगी–भवन बनते रहे, संचालित होते रहे । यह सभी हमारे भारत के इतिहास में उत्कृष्ट कला के, शिल्प के स्थापत्य की अनमोल कृतियों में सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं । भारत का इतिहास इन कला व सौंदर्य से परिपूर्ण है जो देश विदेश के लोगों को इस और आकर्षित करता है यहां सभी प्रकार की कलाऐं भारत के सृजनता की धरोहर है जो रमणीय एवं सर्वोत्कृष्ट है परंपरा को निरंतरता को बांध कर रखती है । यही भारतीय इतिहास के सृजनशील की विशिष्ट विशेषता है ।

❐

सन्दर्भ –

1. *सुधीर सक्सेना, ग्वालियर शीराज–ए–हिन्द, मध्यप्रदेश संदेश, जुलाई 2011, पृ. 58*
2. *रमण सोलंकी, ग्रामीण मालवा में मृदुभाण्ड परम्परा, आधुनिक पश्चिमी मालवा का ग्रामीण वैज्ञानिक एवं तकनीकी योगदान, पृष्ठ–54*
3. *शिव चौरसिया, मालवा का ग्राम्य शिल्प और उसकी संरचना, आधुनिक पश्चिमी मालवा का ग्रामीण वैज्ञानिक एवं तकनीकी योगदान पृ.47–53*
4. *होल्कर दफ्तर*
5. *बा.बा. ठाकुर, होल्कर, शाहीच्या इतिहासाची साधने, भाग–1, पृ. 260*
6. *होलकर सरकार चे दफ्तर, बाम्बे गजेटियर (संबंधित अंश)*
7. *नेट विकिपिडीया*
8. *महाराष्ट्र संस्कृति, डॉ. पु.ग. सहस्त्रबुद्धे कान्टीनेन्टल प्रकाशन पुणे 2006*

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
वर्ष 22, अंक 85–86, अप्रेल–सितम्बर, 2016 पृ. 29–40 ***ISSN 0974 -1100***

मेवाड़ के महान शिल्प विशारद

ज्योति जोशी

भारतीय इतिहास में मेवाड़ का विशिष्ट गौरवपूर्ण स्थान है । मेवाड़ का सांस्कृतिक इतिहास अति समृद्ध है । मेवाड़ के कलाकारों की सौन्दर्यानुभूति ने स्थापत्यकला एवं चित्रकला सौन्दर्य की अभिवृद्धि करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है । मेवाड़ प्रदेश राजस्थान का ही नहीं, वरन् सारे भारत वर्ष का एक गौरवशाली प्रदेश रहा है । मेवाड़ भू–क्षेत्र में ईसा पूर्व की शताब्दियों के आद्य ऐतिहासिक युग में इस प्रदेश में सभ्यता, संस्कृति एवं कला गतिविधियों पर सक्रियता के पुरातात्विक साक्ष्य भी चितौड़गढ़ से लगभग 17 कि.मी. उत्तर में बेड़च नदी के पूर्वी तट पर स्थित मध्यमिका के खण्डहरों और उनसे सम्बद्ध कला सामग्री के रूप में उपलब्ध है ।

चित्तौड़गढ़ के समीन नगरी[1] व आवलेश्वर (प्रतापगढ़) से प्राप्त दूसरी शताब्दी ईसवीं पूर्व के अभिलेख यह सिद्ध करते हैं कि यह क्षेत्र भागवत की वैष्णव परम्परा का प्रमुख केन्द्र रहा है । नगरी से प्राप्त प्राचीनतम् विष्णु मंदिर के अवशेष एवं आवलेश्वर में विद्यमान भागवत स्तम्भ इस भूमि की धार्मिक कला परम्पराओं के परिचायक है । नान्देशमा के 225 ई. (वि.सं. 282) के यूप स्तम्भों से सुविदित हो चुका है कि वह वैदिक परम्परा का एक महत्वपूर्ण केन्द्र था ।[2] ये स्तम्भ प्रस्तर कला के सुंदर नमूने हैं । नगरी से प्राप्त 424 ई. (वि.सं. 481) के अभिलेख[3] से स्पष्ट है कि नगरी में भागवत महापुरूष (विष्णु) के चरण चिन्हों की पूजा प्रचलित

थी, जिसके प्रमाण माध्यमिका के कई गुप्तकालीन मंदिरों व मूर्तियों के ध्वंसावशेषों में विद्यमान है । उक्त विष्णु मंदिर सत्य सूर्य, श्रीगंध और दास बंधुओं ने बनाया था । इसमें पकाई हुई मिट्टी से निर्मित बर्तन एवं पक्षियों के प्रतिरूप तत्कालीन कला के पुष्ट प्रमाण है ।[4] गुप्तोत्तर युग में इस क्षेत्र के अमझारा, तनेसर, जगत, बेदला आदि स्थानों से प्राप्त कोमल पत्थर में निर्मित मूर्तियाँ अपने कला, सौष्ठव एवं सजीवता से गुप्तकालीन कला की स्मृति को बरबस सजग कर देती है ।[5] मेवाड़ तथा दक्षिण–पश्चिम राजस्थान के शिल्पियों के नामों का उल्लेख साहित्यिक ग्रंथ और अभिलेखों से प्राप्त होते हैं । प्राकृत ग्रंथ हरिभद्र सुरी लिखित 'समरायचा कहा' और उद्योतन सुरी का 'कुवालयमाला कहा' ग्रंथ से भी कलाकारों के नामों के उल्लेख प्राप्त होते हैं ।[6] बसंतगढ़ का खेमल माता मंदिर 625 ई. तथा चन्द्रवती से प्राप्त 687 ई. (वि.सं. 744) की ताम्र प्रतिमाएँ शिल्पी शिवनाग द्वारा निर्मित है । ये प्रतिमाएँ इस क्षेत्र की सांस्कृतिक कला परम्परा की पुष्टि करती है ।[7]

7 वीं शताब्दी से कल्याणपुर स्थित शिव मंदिर की मूर्तियों से इस काल के कला की प्रगति के बारे में पता चलता है । इस मंदिर के शिल्पों में स्त्रियों तथा पुरूषों की मूर्तियाँ, वेशभूषा और केश रचना वैशिष्टपूर्ण है ।[8] बसंतगढ मेवाड़ की पश्चिमी सीमा के निकट भोमट क्षेत्र से लगा हुआ है । सामोली शिलालेख 646 ई. (वि.सं. 703) एवं बसंतगढ़ से प्राप्त वर्मलात का शिलालेख 625 ई. (वि.सं. 682) समानता लिये ब्राम्हीलिपि में है ।[9] बसंतगढ़ उस काल में कला का केन्द्र था । यहॉ से प्राप्त ब्रम्हा की मूर्ति तथा अन्य शिल्पावशेषों के उल्लेखानुसार इसके निर्माता वशिष्ठ गोत्री शिल्पी थे[10] तथा सातवीं सदी में यह एक उन्नत नगर था ।[11] जैन धातु प्रतिमाएँ भी इसी परम्परा की कड़ी है । पूर्व मध्यकाल से लगभग सातवीं शताब्दी में गुहिल राजवंश के उद्भव के साथ इस भू–भाग ने कला के क्षेत्र में जो अपूर्व योगदान दिया है, वह भारतीय इतिहास का एक महत्वपूर्ण अध्याय है । तत्पश्चात नागदा के शिल्पावशेषों में यही सांस्कृतिक परम्परा देखी जा सकती है ।[12]

श्रृंगधर :

7 वीं शताब्दी में दक्षिण–पश्चिम राजस्थान की प्राचीन पश्चमी भारतीय कला शैली परम्परा के प्रख्यात शिल्पी और चित्रकार आचार्य श्रृंगधर थे। इस काल में दक्षिण–पश्चिम राजस्थान में शिल्पकला और चित्रकला की काफी प्रगति हुई ।[13]

श्रृंगधर को मरूदेश (पश्चिम भारत) के राजा शिल का राजाश्रय प्राप्त था ।[14] विक्रम संवत 703 (646 ई.) के सामोली शिलालेख[15] के अनुसार वह गुहिल शिलादित्य[16] के काल में काफी प्रसिद्ध हुआ । वटनगर (बसंतगढ़) के शिलालेख[17] तथा विक्रम संवत 744 की धातू प्रतिमा में शिल्पी शिवनाग का उल्लेख प्राप्त होता है ।[18] 7 वीं शताब्दी में इसी प्रकार के शिल्पावशेष कल्याणपुर, शमलाजी और चित्तैडगढ़ के कलाकार तथा शिल्पियों द्वारा निर्मित शिल्पों में पाये जाते है ।[19] गुहिल शिलादित्य के काल में आचार्य श्रृंगधर प्रसिद्ध कलाकार और पश्चिम भारतीय कला के प्रतिपादक थे ।[20]

जयतुक :

चित्तौड़ स्थित समिधेश्वर मंदिर के 1229 ई. के शिलालेख से कुशल कलाकारों के बारे में जानकारी प्राप्त होती है । इस शिलालेख में शिल्पी जयतुक का उल्लेख मिलता है । वह कुशल शिल्पी एवं चित्रकार भी था । उसके पिता का नाम श्रीधर था । शिलालेख के नीचे सूत्रधार जयतुक को मानव प्रतिकृति में हाथ मोड़े हुए दिखाया गया है ।[21] इस रेखा चित्रकला पर पश्चिमी भारतीय शैली का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है । इस रेखचित्र के बारे में ''श्रावक–प्रतिक्रमण सूचत्र–चूर्णी'' (1260 ई.) नामक ग्रंथ में वर्णन किया गया है । वह मेवाड़ का प्रथम शिल्पी और चित्रकार था, जिसके कार्य के बारे में जानकारी प्राप्त होती है । उस समय चित्तौड़ रेखा चित्रकला का एक प्रसिद्ध केन्द्र था ।[22] गुजरात से आकर मेवाड़ में बसने वाले श्रेष्ठी जयंतक ने जवार में आरणवासिनी देवी के मंदिर का निर्माण करवाया ।[23]

माउकी :

समिध्देश्वर मंदिर के शिलालेख में सूत्रधार माउकी तथा उसके पिता का नाम आल का उल्लेख मिलता है । उस काल का वह प्रसिद्ध शिल्पी और चित्रकार था । मुड़े हाथ, पिछे बांधे हुए केश, उड़ते पक्षी और वेशभूषा का सुंदर चित्रण यहाँ दर्शाया गया है । पश्चिमी भारतीय चित्रकला तथा अजंता–वेरूल की मिश्रित रेखा – चित्र शैली को दर्शाया गया है । इस काल में चित्तौड़ के कुशल कारीगरों द्वारा चित्तौड़ के कुशल कारीगरों द्वारा चित्तौडगढ़ में अनेक मंदिरों का निर्माण किया गया ।[24]

आचार्य मण्डन :

मोकल के बाद कुंभकर्ण या कुंभा मेवाड़ के राज्य सिंहासन का स्वामी बना ।[25] वह एक प्रतापी और चहुमुखी प्रतिभा वाला शासक था । उसके शासनकाल में मेवाड़ की शक्ति, सीमाएँ और समृद्धि अपने चरम विस्तार पर पहुँची । महाराणा कुंभा ने मेवाड़ की शक्ति और समृद्धि को बढ़ाने के साथ कई मंदिरों, किलों, राजप्रासादों, साहित्यिक ग्रंथों तथा संगीत एवं सौन्दर्य शास्त्र एवं कला–विज्ञान संबंधी ग्रंथों की रचना करवाई और ग्रंथ चित्रण का कार्य संपन्न करवाया । फलतः मेवाड़ भू–भाग में कला गतिविधियों का खूब प्रसार हुआ ।[26]

महाराणा कुंभा (1433–1468 ई.) के काल में आचार्य मण्डन एक प्रसिद्ध शिल्पी और स्थपति था । उसके पिता का नाम खेता था । वे भंगोरा गोत्र के थे, जो गुजरात से आए थे ।[27] मण्डन मेवाड़ का प्रतिभाशाली स्थापति था ।[28] कुंभालगढ़ का जैन मंदिर का निर्माण मण्डन के निर्देशानुसार सूत्रधार गोप और नरसी के द्वारा किया गया । आचार्य मण्डन जैसे शिल्पी कलाकारों के कारण महाराणा कुंभा का कार्यकाल सुवर्णयुग से जाना जाता है ।[29] उसका प्रसिद्ध कार्य राजवल्लभ मण्डन ग्रंथ में शिल्प तथा स्थापत्य के बारे में जानकारी प्राप्त होती है ।

संगीत कला के समान महाराणा कुम्भा के काल में वास्तुकला के संबंध में भी पर्याप्त मात्रा में साहित्य की रचना हुई थी । स्वयं महाराणा कुम्भा को भी इस कला का अच्छा ज्ञान था । कीर्ति स्तम्भ के पास शिल्प शास्त्रीय ग्रंथ की शिलांकित प्रति प्राप्त हुई है, लेकिन वह खण्डित है । अतः संबंधित ग्रंथ का मात्र अंश ही उपलब्ध होता है लेकिन इस रचना के अतिरिक्त महाराणा कुम्भा के आश्रित सूत्रधार मण्डन ने इस विषय पर कतिपय महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की थी । यहाँ उन रचनाओं का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करना समीचीन होगा ।

प्रासाद मण्डन :

देवालय निर्माण कला से संबंधित ग्रंथ प्रसाद मण्डन वास्तुकला के सिद्धांतों की दृष्टि से एक अपूर्व ग्रंथ है । इस ग्रंथ में देवालय निर्माण कला का विस्तृत विवेचन आठ अध्यायों में किया गया है । इसमें प्रासादों के प्रकार, भूमि चयन, मुहूर्त, शिला, दीवार, द्वार, द्वारशाला, गर्भगृह, सिंहासन, शिखरों का नाम आदि मंदिर के विभिन्न भागों का वर्णन विस्तार से किया गया है । इसके अतिरिक्त वैराज्यादि पचविंश प्रकार के प्रसादों एवं कैसरी आदि पच्चीस प्रासादों का विस्तृत विवेचन एक स्वतंत्र अध्याय में किया गया है । इस प्रकार तत्कालीन एवं प्राचीन देवालयों के अध्ययन की दृष्टि से प्रस्तुत रचना अत्यन्त महत्वपूर्ण है । इस रचना से तत्कालीन वास्तुविद् समाज में व्याप्त विभिन्न मान्यताओं का परिज्ञान भी होता है ।

राजवल्लभ मंडन :

प्रस्तुत रचना में आवासीय गृहों, कूप, वापी, तालाब, दुर्ग एवं राजप्रासादों

के निर्माण से संबंधित बातों का विस्तृत विवेचन हुआ है । इसमें गृहों के आकार–प्रकार एवं शालाओं के आधार पर किये गये वर्गीकरण से हमें प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज में किस–किस प्रकार के भवनों का निर्माण किया जाता था । इस ग्रंथ से परम्परागत नगर योजना का ज्ञान भी प्राप्त होता है । इस प्रकार चौदह अध्यायों में निबद्ध यह ग्रंथ वास्तुकला की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है तथा तत्कालीन विविध प्रकार के भवनों के संबंध में विस्तृत जानकारी देता है ।

वास्तुसार मंडन :–

मण्डन का वास्तुकला विषयक तृतीय ग्रंथ वास्तुसार मंडन है । इस रचना में आयातत्व का विस्तृत विवेचन हुआ है ।

वास्तु विषयक अन्य ग्रंथ :–

इस काल का सर्वोत्कृष्ट वास्तुविद् एवं वास्तु विवेचक सूत्रधार मंडन ही था, लेकिन मंडन के निकट संबंधियों को भी सम्भवतः मंडन के द्वारा ही एतद्विषयक शिक्षा दी गई थी । अतः उन्होंने भी इस विषय पर विभिन्न ग्रंथों की रचना की । मंडन के अनुज नाथा के वास्तु मंजरी नामक ग्रंथ की रचना की जिसमें तीन प्रकरण हैं । इसके प्रथम प्रकरण में जन सामान्य के आवासीय गृहों का वर्णन है । दूसरे प्रकरण में देवालय निर्माण कला का विवेचन है तथा तृतीया प्रकरण का विषय देव प्रतिमा है । इसी प्रकार मंडन के ज्येष्ठ पुत्र गोविन्द ने उद्धार–घोरणी, कला–निधि एवं द्वार–दीपिका नामक तीन ग्रंथों का प्रणयन किया था ।

प्रतिमा कला विषयक साहित्य :–

वास्तुविद् मंडन ने वास्तुकला के साथ–साथ प्रतिमा निर्माण कला का विवेचन करने के लिए स्वतंत्र ग्रंथों की रचना की । वस्तुतः मूर्तिकला व वास्तुकला सहोदरी कलाएँ ही हैं तथा अन्योन्याश्रित भी है । एक के अभाव में दूसरी का महत्व घट जाता है अतः जो वास्तुविद् (स्थापक) होगा उसके लिए मूर्तिकला का अध्ययन भी अनिवार्य माना जाता था । मंडन ने अपनी इस क्षेत्रीय ज्ञान गरिमा का परिचय जिन दो रचनाओं के माध्यम से किया उनका संक्षिप्त विवरण अग्रिम पंक्तियों में प्रस्तुत है –

अ) रूपावतार का देवता मूर्ति प्रकरण :

प्रस्तुत रचना में प्रतिमा निर्माण, प्रतिमा स्थापन आदि विषयों का विवेचन किया गया है । इसमें हिन्दू धर्म के प्रायः सभी देवताओं व उनके विविध रूपों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है तथा इसी प्रकार जैन प्रतिमाओं का एवं यक्ष–यक्षिणियों की प्रतिमाओं का विस्तृत विवेचन उपलब्ध है । इस दृष्टि से इसे हिन्दू एवं जैन प्रतिमाओं का विश्वकोष कहा जा सकता है । इस प्रकार आठ अध्यायों में निबद्ध प्रस्तुत रचना तत्कालीन प्रतिमा निर्माण कला की इतनी विस्तृत जानकारी प्रदान करती है कि इस ग्रंथ के सहारे तत्कालीन प्रतिमाओं का अध्ययन आसानी से किया जा सकता है ।

ब) रूप मंडन :

मंडन की मूर्तिकला विषयक दूसरा ग्रंथ रूप मंडन है जिसकी विषय सामग्री षष्टाध्यायों में विभक्त है । देवता मूर्ति प्रकरण के समान इसमें भी विभिन्न देवी देवताओं के विभिन्न स्वरूप का विस्तृत विवेचन उपलब्ध होता है, जिन प्रतिमाओं के उपरान्त ग्रंथ के अन्त में तोरणों का विस्तार से विवरण दिया गया है ।[30]

ईश्वर :

विक्रम संवत 703 के सामोली शिलालेख के अनुसार जावर कला का एक महत्वपूर्ण केन्द्र था । विक्रम संवत 1554 के जावर शिलालेख से जानकारी मिलती है कि, इस समय जावर कला का एक केन्द्र था । कमठाणा का प्रसिद्ध शिल्पी मण्डन का पुत्र ईश्वर कुशल शिल्पी था । इस कला परम्परा पर वैष्णव संप्रदाय का प्रभाव पड़ा था ।[31] मेवाड़ के चित्तौड़ के कलाकारों के कारण चित्तौडगढ़ में स्थित कालिका–माता मंदिर उत्कृष्ट शिल्पकृतियों का नमुना है । चित्तौड क्षेत्र में पूर्वमध्यकालीन कला के स्वरूप चित्तौड़ दुर्गस्थ कुम्भश्याम मंदिर व कालिका मंदिर विशेष रूपेण उल्लेखनीय है ।[32]

चित्तौड़ का कालिका मंदिर प्रारंभ में (अर्थात मूलतः) सूर्यमंदिर था, जिसके निजगर्भ गृह द्वार पर आसनस्थ सूर्य प्रतिमा जड़ी है । तथा बहारी ताकों गर्भगृह के जंघा भाग पर दिकपाल प्रतिमाएँ जड़ी है । यहाँ पूर्व परंपरानुसार सोम (चन्द्र)

की प्रतिमा भव्य है । इस मंदिर के बाहर ''अश्विनी कुमारों'' व ''चन्द्र'' की शिल्पाकृतियाँ मूर्ति विज्ञान की महत्वपूर्ण निधियाँ है । इस सूर्य मंदिर के बाहर एक विशाल कुण्ड के बीच बना लघु मंदिर देवी भवन था और सम्भवतः आठवीं शती में बनाया गया था ।[33] भीलवाड़ा जिले में मेनाल का मध्ययुगीन महानालेश्वर नामक शिवालय तो चाहमान कला का महत्वपूर्ण स्मारक है और पास ही 12 वीं शती का तत्कालीन शैवमठ, जिसकी दीवार 1168 ई. का शिलालेख खुदा है । जिन मंदिर में प्रवेश करने से पहले एक पंक्ति में तीन लघुदेव कुलिकाएँ पूर्व मध्ययुगीन प्रतीत होती है । इसी युग की जैन कला की एक भव्य कुबेर प्रतिमा भीण्डर क्षेत्र में बांसी नामक स्थान पर मिली थी । भारतीय शिल्प कला की यह अलौकिक सुन्दर एवं सुघड़ मूर्ति है ।[34]

महाराणा कुम्भा के काल में मेवाड़ में सूत्रधारों के चार प्रमुख परिवार थे [35] – खेता का परिवार, जेता का परिवार, दीपा का परिवार व मदन का परिवार ।

सूत्रधार खेता के दो पुत्र मण्डन व नाथा थे । मण्डन ने अपने पिता के शिल्पकला की मात्र प्रायौगिक शिक्षा ही ग्रहण नहीं की बल्कि उसने अपनी पितृ परम्परागत विद्या का गहन सैद्धांतिक अध्ययन भी किया था । अपने इसी अध्ययन के आधार पर उसने वास्तुकला एवं मूर्तिकला विषयक ग्रंथों की रचना की थी । मण्डन के दो पुत्र थे – ईश्वर और गोविन्द । ईश्वर ने जावर स्थित मंदिर का निर्माण करवाया था । जावर के मंदिर की प्रशस्ति में ईश्वर का जो पारिवारिक परिचय प्राप्त होता है उसके अनुसार उनकी वंशावली निम्नानुसार है –

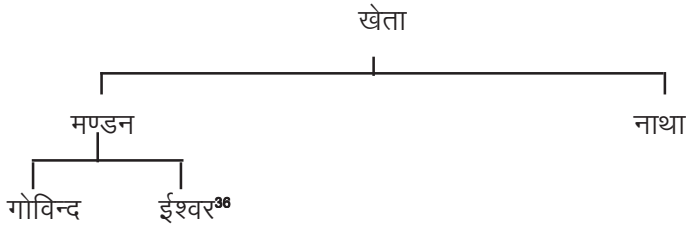

दूसरा प्रमुख परिवार जैता का था । उपलब्ध साधनों से जैता के परिवार का वंश वृक्ष निम्न प्रकार से होगा –

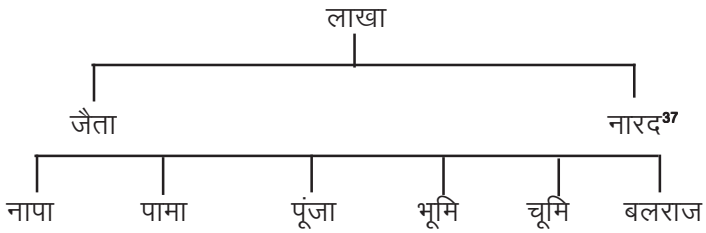

रणकपुर मंदिर का सूत्रधार दीपा[38] था । इसका वंश निम्न प्रकार से है–

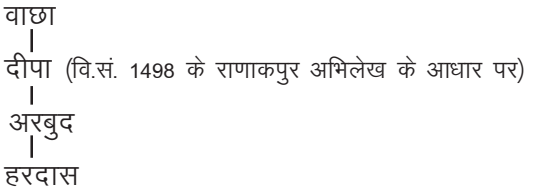

सूत्रधार मदन का परिवार नागदा क्षेत्र में कार्यरत था । इनका वंश वृक्ष निम्न प्रकार से है –

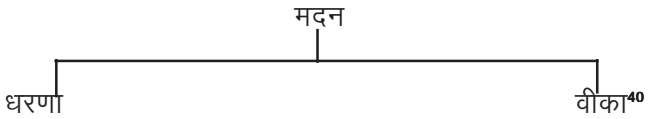

इस प्रकार स्पष्ट है कि महाराणा कुम्भा ने अनेक ख्याति प्राप्त सूत्रधारों को आश्रय प्रदान किया तथा उनके द्वारा वास्तुकला एवं मूर्तिकला के क्षेत्र में पर्याप्त विकास कार्य किया । सूत्रधारों की महत्ता एवं सम्मान के विषय में प्रसाद–मंडन में प्रदत्त निम्न श्लोक महत्वपूर्ण है –

इत्येवं विविध कुर्यात् सूत्र धारास्य पूजनाम ।
भूवित वस्त्रालंकारै गौ महिष्यश्च वाहनैः ।।
अयेषां शिल्पिनां पूजा कर्त्रव्याकर्प कारिनाम् ।
स्वाधिकारा नुसारेण वस्त्रोतीभुब्बल भोजनैः ।।

महाराणा कुम्भा के काल में मूर्ति कला का भी पर्याप्त विकास हुआ था । देवालय निर्माण के साथ ही मूर्तियों का निर्माण भी होने लगा था । इस काल के जैन एवं हिन्दू मंदिरों में हमें पर्याप्त मात्रा में प्रतिमाएँ प्राप्त होती है । देवालयों में उपलब्ध होने वाली प्रतिमाओं का विवरण मंदिरों के प्रसंग में दिया जा चुका है । इन प्रतिमाओं में से प्रथम वर्ग देव प्रतिमाओं का है जिसमें हिन्दू एवं जैनों के उपास्य देवता सम्मिलित है । ये देव प्रतिमाएँ तत्कालीन धार्मिक भावनाओं का बोध

कराती है । इनसे स्पष्ट है कि मोदपाट प्रदेश में जैन धर्म के श्वेताम्बर सम्प्रदाय का विशेष प्रभाव था तथा इनके अनुयायियों की संख्या भी पर्याप्त थी । इनके साथ–साथ यह भी स्पष्ट होता है कि दिगम्बर सम्प्रदाय का प्रभाव दिन प्रतिदिन क्षीण होता जा रहा था । इसी प्रकार हिन्दू मतावलम्बी प्रतिमाओं से स्पष्ट है कि इस समय शैव एवं वैष्णव दोनों शाखाओं का समान रूप से प्रचार था । दोनों ही देव हिन्दुओं के लिये समान रूप से उपास्य थे लेकिन महाराणा कुम्भा का झुकाव भगवान विष्णु की ओर अधिक था । सम्भव है कि गीत गोविन्द के अध्ययन से वह भगवान विष्णु के प्रति विशेष श्रद्धा रखने लगा हो ।

दूसरे वर्ग में हम पौराणिक देव प्रतिमाओं को रख सकते हैं । इस वर्ग में देवी–देवता को लिये जा सकते हैं जिनकी समाज में अधिक प्रसिद्धि नहीं थी । अप्रसिद्ध देवताओं के साथ–साथ यक्ष, किन्नर, गन्धर्वों एवं व्यालों (सिंह व्याल, सर्प व्याल) आदि की गणना भी इसी वर्ग में की जानी चाहिए । इन विभिन्न देवों की प्रतिमाएँ राणाकपुर जैन मंदिर में है तथा हिन्दू देवताओं की प्रतिमाएँ विजय स्तम्भ पर है । वस्तुतः सूत्रधार मण्डन ने अपने देवता मूर्ति प्रकरण ग्रंथ में अनेक हिन्दू एवं जैन देवताओं का विवरण दिया है । अपने उस सैद्धान्तिक विवेचन का व्यावहारिक रूप देने का अवसर उसे राणकपुर देवालय में एवं विजय स्तम्भ में ही मिला । विजय स्तम्भ तो वास्तव में हिन्दू प्रतिमाओं का व्यावहारिक विश्वकोष ही है । इन प्रतिमाओं की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इनमें प्रत्येक प्रतिमा के नीचे नाम भी उत्कीर्ण है ।[41] इस दृष्टि से प्रतिमाओं की पहचान में कोई उलझन नहीं होती । इस दृष्टि से वास्तव में ऐसा प्रतीत होता है मानों मूर्तिविद् मण्डम ने अपने विद्यार्थियों को मूर्ति कला विषयक व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करने हेतु एक भव्य संग्रहालय का निर्माण कर दिया हो ।

तीसरे वर्ग में वे प्रतिमाएँ है जो सामान्य जन जीवन से संबंध रखती हैं । इनमें सामान्य जन जीवन में की जाने वाली क्रियाओं का अंकन किया जाता है जिसमें कहीं युद्ध के दृश्य, कहीं संगीत मण्डलियों के दृश्य, कहीं भोगासन आदि का अंकन होता है । इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार की नायिकाओं एवं अप्सराओं का अंकन भी हुआ है । इन प्रतिमाओं के द्वारा तात्कालीन समाज में प्रचलित वेशभूषा व आभूषणों का ज्ञान प्राप्त होता है । जन सामान्य की विभिन्न अभिरूचियों का बोध होता है ।

चतुर्थ वर्ग में वे प्रतिमाएँ आती है जो किसी न किसी धार्मिक आख्यान से संबंधित होती है । यथा जैन प्रतिमाओं में नेमिनाथ की बरात के दृष्य का अंकन हुआ है जो नेमिनाथ के विवाह–त्याग की आख्यायिका की और संकेत करता है । इसी प्रकार हिन्दू प्रतिमाओं में सागर मंथन का दृश्य सुप्रसिद्ध देवासुर संग्राम अख्यायिका का स्मरण दिलाता है । इस प्रकार ये प्रतिमाएँ समाज में प्रचलित प्रमुख आख्यानों की ओर संकेत करती है ।

कुम्भा कालीन प्रतिमाएँ एक और विशेषता लिये हुए है । यह विशेषता हमें वैष्णव प्रतिमाओं में प्राप्त होती हैं । भगवान विष्णु के प्रसिद्ध चौबीस रूपों की प्रतिमाएँ इस काल में स्थानक मुद्रा में बनाई जाती थी ।[42]

कुम्भलगढ़ दुर्ग में केशव, नारायण, माधव, विष्णु, त्रिविभुम, मधुसूदन, वामन, श्रीधर, ऋषिकेष, पद्मनाभ, दामोदर, संकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरूद्ध, पुरूषोत्तम, अद्योक्षत्र, नृसिंह, अच्युत, जनार्दन, उपेन्द्र, हरि, श्रीकृष्ण, गोविन्द इस चौबीस रूपों की प्रतिमाओं का निर्माण हुआ था जिन पर प्रतिष्ठा तिथि आश्विन शुक्ला 3 वि.सं. 1516 उत्कीर्ण है ।[43] लेकिन अब चौबीस रूपों में से कुछ ही रूप उपलब्ध हैं वे हैं – संकर्षण, मधुसूदन, अद्योक्षत्र, प्रद्युम्न, केशव, पुरूषोत्तम, अनिरूद्ध, वासुदेव, दामोदर, जनार्दन तथा गोविन्द । विष्णु के इन विभिन्न रूपों के अतिरिक्त विष्णु के विभिन्न अवतारों की प्रतिमाओं का निर्माण भी इस काल में हुआ था । चितौड़ में कुम्भा स्वामी के मंदिर में पृष्ठ रथिका में वराह की प्रतिमा लगी है । इनके अतिरिक्त नृसिंह अवतार तथा त्रिविक्रम की प्रतिमाएँ भी मिलती है लेकिन पूरे दशावतार विग्रह एक साथ कहीं देखने में नहीं आये ।

इस समय विष्णु के विविध रूपों के साथ–साथ शक्ति के विविध रूपों की प्रतिमाएँ भी उपलब्ध है । सूत्रधार मंडन ने त्रयोदश गौरी व दुर्गा, अष्ट मातृकाओं, द्वादश सरस्वती, भद्रकाली, चंडी आदि का उल्लेख अपने ग्रंथों में किया है । कीर्ति स्तम्भ पर हमें त्रिखण्डा, तोतला, त्रिपुरा, लक्ष्मी, नन्दा, क्षेमंकारी, सर्वती, महारंडा, भ्रामणी, सर्व मंगला, रेवती, हरि सिद्धि, लीला, सुलीला, लीलांगी, ललिता, लीलावती, उमा, पार्वती, गोरी, हिंगुलाल आदि देवियों की प्रतिमाएँ उपलब्ध है । वि.सं. 1516 में कुम्भलगढ़ में अष्टमातृ का विग्रह तैयार किये गये थे । इनमें से ब्रम्हाणी, माहेश्वरी, कौमाही[44] वैष्णवी, वाराही तथा ऐन्ट्री की प्रतिमाएँ प्रताप संग्रहालय, उदयपुर में संग्रहीत है ।

प्रस्तुत प्रतिमाओं के अतिरिक्त इस समय कांस्य प्रतिमाओं का निर्माण भी किया जाता था । कांस्य प्रतिमाओं का निर्माण डूंगरपुर में होता था । वि.सं. 1508 में निर्मित इस प्रकार की कई कांस्य प्रतिमाएँ उपलब्ध है । आबू के जैन मंदिरों में उपलब्ध अधिकांश कांस्य प्रतिमाओं का निर्माण डूंगरपुर में ही हुआ था ।

उपरोक्त विवरण से ज्ञात होता है कि मेवाड़ के महान शिल्प विशारदों के कारण ही मेवाड़ के कला और स्थापत्य का विकास हुआ ।

❐

सन्दर्भ –

1. *एपिग्राफिका इण्डिका, भाग 17, पृ. 198–199 ।*
2. *उपरोक्त भाग 27, पृ 252 ।*
3. *वरदा, भाग–5, अंक–3, पृ. 2–3, श्री रामचन्द्र अग्रवाल द्वारा संपादित (नगरी का लेख)*
4. *आर.के. वैशिष्ट, मेवाड़ की चित्रांकन परम्परा, पृ. 2*
5. *सुशीला शक्तावत, मेवाड़ का सांस्कृतिक इतिहास, पृ. 12*
6. *आर.के. वशिष्ट, आर्ट एण्ड आर्टिस्ट ऑफ राजस्थान, अभिनव पब्लिकेशन, नईदिल्ली, पृ. 63, यू.पी. ललित कला (अप्रेल 1955–मार्च 1956 ई.) ललित कला अकादमी, नईदिल्ली, भाग 1, 2 पृ. 55*
7. *उपरोक्त ।*
8. *यू.पी. शाह, ललित कला, ललित कला अकादमी, नईदिल्ली (अप्रेल 1955–मार्च 1956 ई.) भाग 1–2, पृ. 56, वसंतगढ़ से प्राप्त प्राचीन स्तम्भ ।*
9. *एपिग्राफिका इण्डिका, भाग 9 पृ. 12*
10. *गजेटियर ऑफ इण्डिया, राजस्थान, सिरोही, पृ. 443*
11. *के.सी. जैन एनाशिएण्ट सिटीज एण्ड टाउन्स ऑफ राजस्थान, पृ. 164*
12. *आर.के. वैशिष्ट, मेवाड़ की चित्रांकन परम्परा, पृ. 3*
13. *एम.आर. मजुमदार, गुजरात एण्ड इटस् आर्ट, हेरीटेज, मुबंई, 1968, पृ. 68*
14. *मोतीचंद्र जैन, मिनिचर पेन्टिग्ज् फ्रॉम वेस्टर्न इण्डिया, अहमदाबाद, 1994 पृ. 18*
15. *आर.व्ही. सोमानी, हिस्ट्री ऑफ मेवाड़, पृ. 38, आनन्द मुल्कराज, अलबम ऑफ इण्डियन पेन्टीग्ज्, नेशनल बुक ट्रस्ट, नईदिल्ली, पृ. 56, पेशी ब्राउन, दि हेरीटेज ऑफ इण्डिया, इण्डियन पेन्टीग्ज्, मैसर, 1930, पृ. 40*
16. *उमाकान्त शाह, स्कलचर ऑफ शामलाजी एण्ड रोडा, बड़ौदा, पृ. 46, हिली, डब्ल्यु. एल. दि इण्डियन एन्टीक्युटी, खण्ड 4 1875 पृ. 10*
17. *एपिग्राफिका इण्डिका, भाग 9, पृ. 12*
18. *के.सी. जैन, एन्शियन्ट सीरीज् एण्ड टाउन्स ऑफ राजस्थान, पृ. 145*
19. *यु.पी. शाह, ललित कला, भाग 1–2, नईदिल्ली, अप्रेल 1955–मार्च 1956, पृ. 55*
20. *आर.के. वशिष्ठ, आर्ट एण्ड आर्टिस्ट ऑफ राजस्थान, अभिनव पब्लिकेशन, नईदिल्ली, पृ.10*
21. *शोध पत्रिका, वर्ष 25, अंक 1, पृ. 53, उपरोक्त, वर्ष 26 अंक 1, पृ.66*

संवत् 1286 वर्ष श्रावणसु । रवो

श्री समधे सुरदवे साक्ष्य नसव । श्रीधर पुत्र सूत्र जयतुक सदा प्रणमति ।
1289 वरीषे श्री समधे सुरदेव प्रणमते सूत्र । आल पुत्र ।
माडकी नयता ससद्धेश्वर महादेव मंदिर चित्तौडगढ़ ।

22. *आर.के. वशिष्ठ आर्ट एण्ड आर्स्टिस्ट ऑफ राजस्थान, पृ. 65*
23. *एपिग्राफिका इण्डिका, भाग 20 पृ. 99, आर.के. वरिष्ठ, मेवाड़ की चित्रांकन परम्परा, पृ.3*
24. *आर.के. वशिष्ठ, आर्ट एण्ड आर्टिस्ट ऑफ राजस्थान, पृ. 65*
25. *रामवल्लभ सोमानी, महाराणा कुम्भा, पृ. 59–106*
26. *राजशेखर व्यास, मेवाड़ की कला और स्थापत्य, पृ. 30*
27. *रतनचंद्र अग्रवाल, सम्मेलन पत्रिका, कला अंक, पृ. 285–89*
महाराजाधिराज महाराणा श्री माकल आदेशात सूत्रधार मंडन
वतराकस्य धने गुजरात धी बुलायो अठे दरबार में सीलप
शस्त्रभरयो थको सुधारं हो नहीं जिसूं कने गुजरात धी बुलायो
बहुत मेहनत सु । यस । प्रत रू. 30
28. *रतनचंद्र अग्रवाल, सम्मेलन पत्रिका, वर्ष 44, पृ. 289*
श्री मदद् देशे मेदपाटा भिथाने क्षेत्रायरव्ये भूतसूत्रधारी वरिष्ठ : ।
पुत्रे ज्येष्ठो मंडनस्तम्भ तेन प्रोक्त शास्त्रं मंडनरूप पूर्वम् ।। 40 ।।
29. *रतनचंद्र अग्रवाल, सम्मेलन पत्रिका, वर्ष 44, पृ. 289*
श्री मेदपाटे नृप कुंभकर्ण रत्न दडधिकारों वपराग सेवी
यमउन्तख्यो भुवि सूत्रधारस्ते नोहतो भूपति बाम्हा मोयम् ।
राजवल्लभ मंडन, 14/43 ।
30. *डॉ. तारामंगल, महाराणा कुम्भा और उनका काल (1433 से 1468 ई.) राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, प्रथम संस्करण, जुलाई 1984, पृ. 159–61*
31. *आर.के. वशिष्ठ, आर्ट एण्ड आर्टिस्ट ऑफ राजस्थान, पृ. 16*
32. *रतनचंद्र अग्रवाल, प्राचीन भारतीय मूर्तिकला को मेवाड़ की देन, पृ. 12*
33. *उपरोक्त, पृ. 12–15*
34. *उपरोक्त, पृ. 15*
35. *सम्मेलन पत्रिका, वर्ष 44 अंक 2–3, पृ. 293–94 पर श्री रतनचन्द अग्रवाल का लेख ।*
36. *वि.सं. 1554 (ई. 1497) की रमाबाई की जावर प्रशस्ति (क्षेत्राष्ट सूत्र–धारस्य पुत्रोमंडन–आत्मवान), जी.एन. शर्मा, राजस्थान के इतिहास के स्रोत, पृ. 157*
37. *वि.सं. 1495 (ई. 1438) के चितौड़ के अभिलेख में नारद का उल्लेख आया है ।*
38. *वि.सं. 1496 (ई. 1439) का राणकपुर का अभिलेख, पंक्ति सं. 47*
39. *वि.सं. 1494 (ई. 1437), नागदा का लेख, श्लोक सं. 8*
सदा वदंते श्रीमद् धर्म मूर्ति उपाध्याय :
घटित सूत्रधार मदन पुत्र धरणा बीका भ्यां ।
40. *उपरोक्त*
41. *ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग 1. पृ. 310, राजपूताना म्यूजियम रिपोर्ट, वर्ष 1921, पृ. 5 सोमानी, महाराणा कुम्भा, पृ. 274–75, डे यू एन मेवाड़ अण्डर महाराणा कुम्भा, पृ. 114*
42. *गोपीनाथ राव, एलीमेंनटस् ऑफ हिन्दू एकनोग्राफी, भाग 1, अंक 1, पृ. 229, रूप मण्डन, अध्याय 3, श्लोक सं. 9–20 ।*
43. *संवत् 1516 वर्ष शके 1382 प्रवर्तमाने अश्विन शुक्ल 3 श्री कुम्भलमेरो महाराजा श्री कुम्भकर्ण न वटे विष्णु मूर्ति : संस्थापिता : । शुंभ भवतु ।।*
44. *शोध पत्रिका, वर्ष 8 अंक 3, श्री रतनचंद अग्रवाल का लेख – रूपमंडन और कुम्भलगढ़ से प्राप्त प्रस्तर प्रतिमाएँ ।*

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
वर्ष 22, अंक 85–86, अप्रेल–सितम्बर, 2016 पृ. 41–45 ***ISSN 0974 -1100***

शर्कीकालीन मस्जिद एवं उसके शिल्पकार

कुसुम राय

गोमती नदी के किनारे जौनपुर मध्यकालीन स्थापत्य का प्रमुख केन्द्र रहा है । शर्की राजवंश के काल में हुई संस्कृतिक उन्नति के कारण जौनपुर को 'भारत का सिराज' कहा जाने लगा । यहाँ निर्मित मस्जिदों में हिन्दू तथा मुसलमान भवन निर्माण शैलियों का अदभुत एवं बेमिसाल समन्वयन दिखाई देता है । हिन्दू एवं मुस्लिम शिल्पकारों ने यहा की मस्जिदों में हिन्दुत्व तथा इस्लाम की कलात्मक कला का बड़ा ही मार्मिक और सुन्दर मिलन पत्थरों पर प्रस्तुत किया है ।

तैमूर के आक्रमण के समय मलिक सरवर ने राजनैतिक अस्थिरता का लाभ उठाकर अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी एवं जौनपुर में शर्की राज्य की स्थापना की । वस्तुतः दिल्ली सलतनत के विघटन के काल में राजनीतिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया को जो बढ़ावा मिला उसकी अभिव्यक्ति समकालीन स्थापत्य में भी जनर आती है । इब्राहीम शाह शर्की के काल में जौनपुर की नई शर्की शैली का जन्म हुआ ।

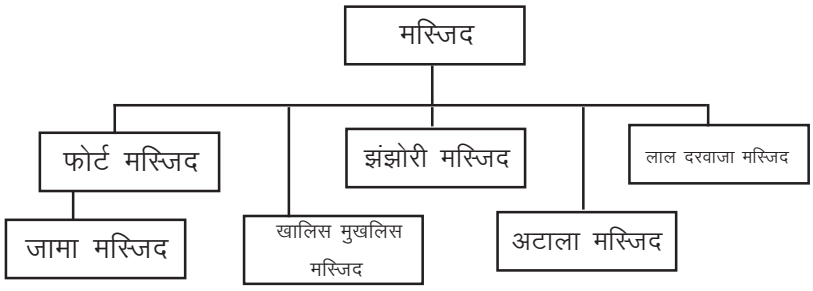

अटाला मस्जिद, लाल दरवाजा मस्जिद तथा जामा मस्जिद बहुत महत्वपूर्ण स्मारक है । जौनपुर के मुसलमान शासक बहुत कला प्रेमी थे । उनके बनवाये हुए भवन उनके शिल्प–प्रेम के जीते जागते प्रमाण हैं । अटाला मस्जिद जो इब्राहीम के शासनकाल में (1401–39 ई.) में पूरी हुई थी, जामा–ए–मस्जिद, जो हुसैनशाह के समय में (1452–78 ई.) बनवाई गई थी, लाल दरवाजा मस्जिद, झंझीरी का टूटा हुआ भाग और खालिस मुखलिस मस्जिद भारत में मुसलमान स्थापत्य–कला के कुछ सुन्दरतम् उदाहरण है, इन भवनों का निर्माण विध्वस्त मंदिरों की सामग्री से किया गया था परन्तु इसमें संदेह नहीं कि शर्की शासकों ने इस सामग्री से पूरा–पूरा लाभ उठाने में कोई प्रयत्न शेष न रखा था । जैसा कि फ्यूरर ने लिखा है इन भवनों का निर्माण हिन्दू शिल्पियों ने किया था परन्तु यह ज्ञात नहीं होता कि उन्हें विदेशी शिल्पियों के निर्देशानुसार कार्य करना पड़ता था । हिन्दू–शिल्पयों को अपने स्थापत्य कला के आदर्शों का अनुसरण करने की पूरी स्वतंत्रता दी गई थी, उन्हें इतना ध्यान अवश्य रखना पड़ता था कि उनकी निर्मितियाँ इस्लामी धार्मिक विधियों के प्रतिकूल न हों । इन भवनों में सबसे अधिक अलंकृत व आकर्षण अटाला मस्जिद है, जिसमें हिन्दू और मुसलमान शैलियों का विलक्षण समन्वय हुआ है ।[1]

इब्राहीम शाह ने सैनिकों की सुविधा के लिए किले से उत्तर की ओर एक बड़ी मस्जिद का निर्माण कराया जो अटाला मस्जिद के नाम से प्रसिद्ध है । यद्यपि इसका शुभारम्भ कई वर्ष पूर्व फिरोज तुगलक ने ख्वाजा कमाल जहां की देख–देख में किया था, और नींव मखदूम चेरागे हिन्द सुहारवर्दी जाफरबादी ने डाली थी ।[2]

अटाला मस्जिद के निर्माण के लिए दिल्ली, मिश्र एवं युनान से कारीगर आये थे । दरअसल दिल्ली के विनाश के कारण दिल्ली के उच्च कोटि के शिल्पकार पत्थरकट तथा चित्रकारों की एक बड़ी संख्या जौनपुर में एकत्र हो गई । बादशाह शर्की शिल्पकारों का आदर करता था । पत्थरकटों में हिन्दू थे । कहा जाता है कि अटाला मस्जिद के निर्माण में मिश्र और यूनान से भी कारीगर आमंत्रित किए गए थे । शर्की बादशाह की यह इच्छा थी कि तुगलक निर्माण कला से श्रेष्ठ शैली इन मस्जिदों के निर्माण में अपनाई जाए, जिसकी संसार के

अद्भुत कार्यों में गणना हो सके । कहते हैं कि दिल्ली से आये हुए शिल्पकारों में इकरामुल्ला, शमसुद्दीन, कासिम अली, बाहिद खां तथा बक्स का नाम विशेष उल्लेखनीय है । हिन्दुओं में पूर्णमासी, राम कुबेर, संत बख्शसिंह प्रमुख थे । इन लोगों की देख–रेख में अन्य और कारीगर कार्य करते थे । ख्वाजा कमाल जहाँ की देख–रेख में उनके बनाये हुवे नक्शे के अनुसार मस्जिद का निर्माण हो रहा था । इसकी नींव मखदूम चेरागी हिन्द ने डाली थी ।[3]

अटाला मस्जिद शर्की निर्माण कला का प्रथम तथा अद्वितीय चमत्कार कहा जा सकता है । इसकी ऊचाई 100 फीट से अधिक है । इसमें एक चबूतरा है, जिसके तीनों ओर ढलाने हैं, जो दो खण्ड में है । प्रत्येक दिशा के बीच तीन फाटक हैं । इसकी छत का मध्यवर्ती भाग गोलाकार है और मिश्री निर्माण कला के आधार पर निर्मित है । छत की पत्थरों में भी विभिन्न प्रकार की पच्चीकारी दिख पड़ती है ।[4]

इसका केन्द्रीय मेहराब अत्यधिक सुन्दर एवं प्रभावशाली है, यह सौ फीट से अधिक ऊँचा है । यह बड़ा विशाल एवं वैभवपूर्ण है । इसके दाहिने एवं बायें और के सुन्दर स्तम्भ अपने ऊपर उठाये हुए दिख पड़ते हैं । अन्य मस्जिदों की भाँति इसकी सुन्दरता बहुमूल्य संगमरमर के पत्थरों और विभिन्न प्रकार के चमकीले रंगों आदि पर आधारित नहीं है, वरन् इसकी सुन्दरता निर्माण–कला, क्रम–पच्चीकारी तथा मिश्री शैली की लताओं व सुन्दर गुलाब एवं कमल के पुष्पों पर आश्रित है । इसका सम्बन्ध केवल चमक–धमक से ही नहीं है, वरन् आश्चर्य तो यह है कि साधारण पत्थर, चूने, ईंट, गारे कंकर तथा मिट्टी से बड़ी ही अद्भूत कला का प्रदर्शन किया गया है, जबकि इस मस्जिद को शर्की निर्माण–कला का शुभारम्भ कहा जाता है । इसकी सुन्दरता तथा निर्माण कला की दृष्टि से भरपूर होना दैविक सहायता नहीं तो और क्या है ।[5]

इस प्रकार अटाला मस्जिद के हिन्दू एवं मुस्लिम शिल्पकारों ने इस निर्माण में कला की दो पृथक शैलियों को समन्वित कर दिया । यह मस्जिद हिन्दू मुस्लिम एकता का भी उदाहरण है । अटाला मस्जिद के शिल्पकारों के संबंध में परसी ब्राऊन ने भी कहा है कि जिस शिल्पकार ने इस मस्जिद का आकार तथा निर्माण के विभिन्न दृष्टिकोण का चित्रण किया होगा, उसके लिए कहा जा सकता

है कि वह अपनी कला में अद्वितीय रहा होगा । इस विषय में तनिक भी संदेह नहीं रहा कि इस मस्जिद के निर्माण में बहुत सेहिन्दू शिल्पकारों ने योगदान दिया था जिनको मुसलमान शिल्पकारों की देख रेख में उनके नक्शे के अनुसार कार्य करना पड़ा होगा । जौनपुर की जामा मस्जिद भी काफी बड़ी तथा विराट है । यह खुटहन की सड़क पर मुहल्ला उमर खां पुरानी बाजार के निकट स्थित है । इसकी ऊँचाई दो सौ फीट से अधिक है और नगर के प्रत्येक अंचल से दिखाई पड़ती है । इसके गुम्बद और केन्द्रीय मेहराब अत्यन्त सुन्दर है । यह मस्जिद शर्की काल का अन्तिम बिन्दु है, जिसने जौनपुर तथा शर्की राज्य को चार चाँद लगा दिया ।

यह मस्जिद बहुत प्रशस्त विस्तारपूर्ण एवं वैभवशाली है । यह दक्षिणी द्वार धरातल से 20 फीट की ऊँचाई पर है । दक्षिणी फाटक इतना विराट एवं वैभवपूर्ण है कि देखने से इस विषय का आभास होता है कि यह अपने दर्शकों को ही पीस डालेगा ।[6] इसका केन्द्रीय मेहराब बड़ा ही विस्तारपूर्ण भयभीत करने वाला है, जिसमें पच्चीकारी तथा जाली का कार्य बड़ी स्वच्छता से बनाया गया है तथा विभिन्न प्रकार की मिश्री बेलों तथा पुष्पों से सुसज्जित हैं ।[7] वस्तुतः भारत में इस ढंग की खालिस पत्थर की इमारत शर्की निर्माण कला का उच्चतम चमत्कार है ।

परसी ब्राउन ने मस्जिद की शैली के संबंध में लिखा है कि शिल्पकारों ने इसके निर्माण में जो घोर परिश्रम किया है, दर्शकों पर उसका प्रभाव अवश्य पड़ता है । यह शैली शर्की काल तक सीमित रही । विशेष रूप से जौनपुर की मस्जिदों तक जिसका प्रभाव इस काल में बाहर के भवनों पर भी पड़ा जैसा कि इटावा व कन्नौज की मस्जिदों में देखा जा सकता है । दरअसल इस मस्जिदों के निर्माणकर्ता वास्तव में प्रशंसा के योग्य है कि उन्होंने अपने ढंग की इतनी अद्वितीय, पूर्ण सुन्दर शैली अपनाई जिसका अनुकरण असंभव है । इन विशेषताओं से इसकी विचित्रता का भारी प्रदर्शन होता है ।[8]

इस प्रकार जौनपुर में कुछ ऐसी मस्जिदों का निर्माण हुआ जिसे अद्भुत चमत्कार कहा जा सकता है । हिन्दू–मुस्लिम मिश्रण शैली में हिन्दू और मुसलमानों के रीति रीवाजों एवं हिन्दुत्व एवं इस्लाम की कलात्मक आत्मा का जौनपुर के भवनों में अद्भुत मिलन दिखता है । यहाँ की मस्जिदें भारतीय स्थापत्य की धरोहर हैं । ❐

सन्दर्भ –

1. *ईश्वरी प्रसाद, भारतीय मध्ययुग का इतिहास – पृ. 534*
2. *सय्यद एकबाल अहमद, जौनपुरी, शर्की राज्य जौनपुर का इतिहास– पृ. 386*
3. *सय्यद एकबाल अहमद, जौनपुरी, शर्की राज्य जौनपुर का इतिहास – पृ. 390*
4. *सय्यद एकबाल अहमद, जौनपुरी, शर्की राज्य जौनपुर का इतिहास – पृ. 390*
5. *सय्यद एकबाल अहमद, जौनपुरी, शर्की राज्य जौनपुर का इतिहास – पृ. 392*
6. *परसी ब्राउन, गजेटियर जौनपुर, शर्की मानूमेन्ट, पृ. 30*
7. *सय्यद एकबाल अहमद, जौनपुरी, शर्की राज्य जौनपुर का इतिहास – पृ. 411*
8. *सय्यद एकबाल अहमद, जौनपुरी, शर्की राज्य जौनपुर का इतिहास – पृ. 416*

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
वर्ष 22, अंक 85–86, अप्रेल–सितम्बर, 2016 पृ. 46–54 ***ISSN 0974 -1100***

नागार्जुन के काव्य में दलित चेतना

डॉ. तबस्सुम शेख

दलित का अर्थ समाज के दबे–कुचले वर्ग से है, किन्तु इधर कुछ वर्षों से दलित का अर्थ 'अनुसूचित जाति' से लिया जाने लगा है। अन्याय, शोषण, वर्गभेद, अत्याचार के विरूद्ध आई चेतना केवल अनुसूचित जाति में ही नहीं अपितु आदिवासियों, खेतिहर मजदूरों, गरीब किसानों में भी आई है जो आर्थिक, सामाजिक स्तर पर 'दलित' जैसे ही हैं।

हिन्दी साहित्य में दलित का तात्पर्य समाज के उस पद दलित अछूत वर्ग से लिया गया है जो वर्षों से समाज के शोषण का शिकार है तथा अधिकारविहीन एवं उपेक्षित है। दलित साहित्य का प्रारंभ सर्वप्रथम मराठी में हुआ। महाराष्ट्र के दो दलित नेताओं ज्योतिबा फुले एवं भीमराव अम्बेडकर के विचारों ने दलितों में चेतना जाग्रत की। अम्बेडकर ने दलितों के लिए मन्त्र दिया है – "Educate, Organise and Agitate अर्थात् शिक्षित बनो, संगठित हो और संघर्ष करो। दलित चेतना को जाग्रत करने में इस नारे का विशेष योगदान है तथा दलित कथाकारों ने दलित साहित्य में समता, न्याय, बन्धुत्व को मूल विषय बनाया है।

'दलित साहित्य' के अंतर्गत क्या आना चाहिए और क्या नहीं इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। प्रेम कुमार मणि के अनुसार –

''दलितों के लिए दलितों के द्वारा लिखा जा रहा साहित्य दलित साहित्य है।''

इसी प्रकार डॉ. एन. सिंह ने भी दलितों द्वारा लिखे साहित्य को इस वर्ग में माना है – ''दलित साहित्य दलित लेखकों द्वारा लिखित वह साहित्य है जो सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और मानसिक रूप से उत्पीड़ित लोगों की बेहतरी के लिए लिखा गया हो।''

डॉ. रामचन्द्र वर्मा के अनुसार – ''दलित शब्द मसला हुआ, मर्दित, दबाया, रौंदा, कुचला हुआ विनष्ट किया हैं।''[1]

श्री केशव मेश्राम के अनुसार – ''हजारों वर्ष जिन लोगों पर अत्याचार हुआ ऐसे अछूतों को दलित कहना चाहिए।''[2]

हिन्दी साहित्य में दलित साहित्य की परिभाषा चाहे जो हो लेकिन भारतीय समाज में दलित का बोध कई स्तरों पर किया जाता है। कुछ सामाजिक, कुछ आर्थिक, कुछ धार्मिक दृष्टि से दलित होते थे और है। इन तीनों स्तरों पर दलित का बोध होता है। कबीर, पीपा, रैदास आदि कवि जब पीड़ितों, शोषितों, दलितों की आवाज़ मुखर करते हैं, तो इसी चेतना को जागृत करते हैं। निराला का चतुरी चमार और हीरा डोम का अछूत समाज का वह दलित वर्ग ही है जिसे अस्पृश्य मान कर उपेक्षित, तिरस्कृत रखा गया है। निराला ने चतुरी चमार की पीड़ा को झेला और साहित्य में रूपायित किया तो हीरा डोम ने समाज का तिरस्कार सहकर अपनी कविता में उसे संपादित किया।

हिन्दी में 'दलित विमर्श' का प्रारंभ प्रसिद्ध कहानी पत्रिका 'सरिका' के दो 'दलित विशेषांकों' से माना जाता है जो क्रमशः अप्रैल 1975 एवं मई 1975 में निकाले गए। 'हंस' पत्रिका में भी इसके कर्ता–धर्ता राजेन्द्र यादव दलित विमर्श की चर्चा बराबर करते रहे हैं। हिन्दी के दलित कथाकारों में डॉ. एन.सिंह, ओम प्रकाश वाल्मीकि, रामशिरोमणि, जयप्रकाश कर्दम, माता प्रसाद, अरविन्द राही, मलखान सिंह, मोहन दास, रघुवीर सिंह आदि के नाम लिए जा सकते हैं। रमणिका गुप्ता द्वारा सम्पादित 'दूसरी दुनिया का यथार्थ' जिसमें 18 कहानियां संकलित की गई हैं, वे सभी दलित कहानीकारों द्वारा रचित हैं। इस प्रकार डॉ. एन. सिंह के दो कथा संग्रह– 'यातन की परछाइयां' तथा 'काले हाशिए पर' प्रकाश में आए हैं जिनमें दलित लेखकों की कहानियां संकलित की गई हैं।

दलितों द्वारा लिखी गई ये कहानियां उनके स्वानुभूत अनुभवों पर आधारित होने के कारण उस सामाजिक अन्याय का घिनौना चेहरा यथार्थ में प्रस्तुत करती हैं जो समाज में ग्रामीण स्तर पर अभी भी किसी न किसी रूप में विद्यमान है। यद्यपि रेणुजी ने अपनी कहानियों में इसे काफी पहले किसी न किसी रूप में अभिव्यक्ति देनी प्रारंभ कर दी थी। 'उच्चाटन' कहानी में 'विलसिया' (रामविलास) इसी दलित वर्ग का पात्र है जो धन कमाकर गांव में लौटा है तो साथ में शहर की चेतना भी लाया है जहॉ दलित का तिरस्कार नहीं होता। छूआछूत का जो वि ा जाति व्यवस्था में गहराई तक व्याप्त है उसके दुष्परिणाम दलितों को आज भी भोगने पड़ रहे हैं, इसमें कोई दो राय नहीं हैं। हिन्दी में प्रकाशित कुछ दलित लेखकों के कहानी संग्रह इस प्रकार हैं –

1. रक्तबीज– सत्यप्रकाश 2. दृष्टिकोण– अरविन्द राही 3. सलाम– ओम प्रकाश बाल्मीकि 4. चार इंच की कलम– कुसुम वियोगी 5. सुरंग– दयानन्द बटोही 6. आवाज़ें– मोहनदास नैमिशराय।

दलित चेतना से युक्त कुछ प्रमुख उपन्यासों के नाम इस प्रकार हैं –

1. जस–तस भई सवेर– सत्यप्रकाश 2. छप्पर– जयप्रकाश कर्दम 3. जूठन– ओम प्रकाश वाल्मीकि 4. मुक्तिपर्व– मोहनदास नैमिशराय

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि– दलित का तात्पर्य समाज के उस पद्दलित वर्ग से है जिसे सदियों से 'अछूत' कह कर उपेक्षित किया गया, हर प्रकार से उसका शोषण किया गया, उसे कोई अधिकार नहीं दिए गए, शिक्षा से वह वंचित रहा और उसकी इच्छा शक्ति को पनपने नहीं दिया गया। 'दलित' शब्द पीड़ित, शोषित, तिरस्कृत जीवन का बोध करता है। दलित समाज का सबसे उपयोगी वर्ग है परंतु उसे सबसे निम्न माना जाता है। नागार्जुन ने अपने काव्य में इसी पीड़ित, शोषित और तिरस्कृत वर्ग को सम्मानित स्थान दिया है तथा उसके प्रति सहानुभूमि व्यक्त की है। नागार्जुन की कविता 'अकाल और उसके बाद' में भी एक दलित वर्ग झांकता नज़र आता है जो भूखा है। मानवतावादी नारों के नीचे उसकी भूख, पीड़ा अनसुनी की जाती है। नागार्जुन ने उस पीड़ा को सुना और इस वर्ग की ओर इंगित करते हुए लिखा –

'कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया, सोई उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त।'' 3

दरिद्र, भूमिहीन, चमार जाति के मज़दूरों में चेतना, विरोध और क्रांति की आग सुलगती देख उन्हें नक्सली करार दे दिया जाता है। कवि समाज के समक्ष एक प्रश्चिह्न लगाता है कि आज भी स्वतंत्र, लोकतांत्रिक देश में इनको अपने अधिकारों के लिए आवाज़ उठाने का हक क्यों नहीं है? इनकी जमीनें लूट गई चुप रहे, लेकिन जब बहू–बेटियों की इज्ज्त पर समाज के सम्मानित तथाकथित ठेकेदारों ने हाथ डाला तब क्या वे मौन रह सकते हैं? कवि इन्ही माध्यामों से उनमें चेतना तथा क्रांति के स्तर का अभिनंदन करता है और अपने युग के तरूणों को भी उसी स्वर में नारे लगाने के लिए ललकारता है –

''इनकी प्रतिध्वनियों से कारा –
की दीवारें हिल – हिल जाएं !
आओ इन बंदी वीरों के
स्लोगन वे हम भी दुहराएं।'' 4

नागार्जुन की ''हरिजन गाथा'' कविता में हरिजनों (दलितों) की बस्ती पर हुए आक्रमण का वर्णन है। साधन–सम्पन्न ऊंची जाति वालों द्वारा होली के उत्सव पर हरिजन टोली में आग की होली खेली गई थी और उसमें कम से कम तेरह व्यक्तियों को जिंदा झोंक दिया गया था क्योंकि अब वे आवाज़ ऊंची करके बोलने लगे थे।

''ऐसा तो कभी नहीं हुआ था कि
एक नहीं, दो नहीं, तीन नहीं –
तेरह के तेरह अभागे –
अकिंचन मनुपुत्र
जिंदा झोंक दिए गए हों
प्रचंड अग्नि की विकराल लपटों में
साधन सम्पन्न ऊंची जातियों वाले
सौ–सौ मनुपुत्रों द्वारा।'' 5

''ये पक्तियां सदियों से उत्पीड़ित मानवता के प्रति समर्पित है जो उनकी व्यथा–कथा कहती है। इनमें कवि मन स्वतः उन अभिशप्तों की ओर खींच जाता है जो बल पूर्वक अग्नि के हवन कुण्ड में झोंक दिए गए हैं। आज भी स्थिति वैसी बनी है। बच्चा पैदा होने से पहले ही पितृ–स्नेह से वंचित कर दिया जाता है। यह अत्याचार नहीं मानवता के माथे पर अमिट कलंक है।''[6]

प्रस्तुत पंक्तियों में नागार्जुन ने दलितों के जीवन का बड़ा ही मार्मिक और यथार्थवादी चित्रण किया है। आज भी समाज में दलितों के साथ इसी प्रकार के अत्याचार हो रहे हैं। आज भी कहीं उनकी फसल लूट ली जाती है तो कहीं दलित दूल्हे को घोड़ी से उतारा जाता है, कहीं मंदिर में प्रवेश निषेध है, तो कहीं गांव में डोडी पिटवा कर गांव के सार्वजनिक नल कूप से पानी भरने पर पाबंदी लगा दी जाती है। आज भी जातिगत आधार गांव में श्रेष्ठता का आधार है। कामों का बंटवारा जाति के अनुसार आज भी चल रहा है। गांवों में आज भी दलित अछूत के नाम से ही जाना जाता है। वर्णवादी समाज में निम्न कही जाने वाली जातियां हीन भावना से अब भी ग्रस्त हैं क्योंकि वे शूद्र के घर पैदा होने के कारण अछूत है। उन्हें हिन्दू होते हुए भी हिन्दू धर्म से अलग रखा गया है। यह उसका मानसिक शोषण है, उनको हीनभावना से ग्रसित करने वाली कुत्सित विचार धारा है।

''नागार्जुन की खुली दृष्टि इन अत्याचारों, अन्यायों को देखती है और चुप नहीं हो जाती वरन् उनकी उसी कुटियां में कवि जा पहुंचता है, उनके बीच खड़ा हो जाता है, उन्हें उनके अधिकारों का ज्ञान करता है।'' [7]

''दूर होगा ब्राह्मण का दंभ
ाान्त हो जाएगा राजन्य
वैश्य का लालच होगा नष्ट
शुद्र होगा उन्नत स्वाधीन
स्त्रियां होंगी पुरूषों के तुल्य
बढ़ाएंगे बस गुण ही मूल्य।'[8]

नागार्जुन चिंतन करते हैं कि आज़ादी के इतने वर्षों के बाद भी इनकी दशा में कोई सुधार नहीं आया वरन् दिन – प्रतिदिन बदतर होती जा रही है। क्या इनके सुख की चिंता सरकार को नहीं होनी चाहिए ? समाज क्या इन्हें

सुख–समृद्धि से भरा–पूरा देखना गवांरा नहीं करेगा ? यहीं हरिजन जब अपने हक के लिए प्रतिहिंसा पर उतर आते हैं तब समाज के साथ–साथ न्याय व्यवस्था भी उन्हें दोषी मानती है। नागार्जुन ने 'कब होगी इनकी दीवाली' शीर्षक कविता में यही प्रश्न पूछें हैं।

''इनका मुक्ति पर्व कब होगा?
कब होगी इनकी दीवाली?
चमकेगी इनके ललाट पर
कम ताजे कुमकुम की लाली? '' [9]

नागार्जुन के यह प्रश्न देश के प्रत्येक व्यक्ति से है, समाज से है तथा शासन व्यवस्था से है। क्या इनके शोषण का अंत होगा ? यदि नहीं तो ये फिर नक्सलवादी बनने को विवश होकर अपना अस्तित्व बचाने की कोशिश करेंगे जिसके लिए पूर्णरूप से हम सब उत्तरदायी होंगे। रक्तपात को बढ़ावा मिलेगा और सामाजिक अमन–चैन मिट जाएगा। आतंक के बादल हमेशा ही छाए रहेंगे जो कभी भी कहर के रूप में बरस पड़ेंगे और अन्त में विजय इन्हें अवश्य ही मिलेगी नागार्जुन इनकी इसी मुक्ति के प्रकाश की किरण को देख कर सहसा कह उठते हैं –

'' इनकी विजय सुनिश्चित ही है
तिमिर तीर्थ वाले दंगल में
इन्हें न तू 'बेचारे' कहना
अजी यहीं तो ज्योति–कीट हैं।'' [10]

'हरिजन गाथा' कविता में नवजात शिशु जो सारे जाति के दुःखों को दूर करने वाला है, के संबंध में घोषणा पुजारी द्वारा की जा चुकी है। उसे बचाने के लिए गांव के दूर **'कोइलरी'** में भेज देने की बात गांव के बड़े–बूढ़े सोचते हैं क्योंकि –

''होशियार इस शिशु के पीछे
लगा रहे हैं गीदड़ फेरे
बड़े–बड़े इन भूमिधरों को
यदि इसका कुछ पता चल गया
दीन–हीन छोटें लोगों को
समझो फिर दुर्भाग्य छल गया।'' [11]

नागार्जुन जब कभी भी किसी असहाय दलितों पर अत्याचार होता देखते हैं तब वह स्वयं को उन असहायों और पीड़ितों के साथ खड़ा पाते हैं और कविता स्वयं ही फूट पड़ती है।

''पता चला वे सात जने थे,
जाने कब से यहां पड़े थे!
सातों के सातों 'नक्सल' थे,
अपने हक के लिए लड़े थे!
सातों के सातों चमार थे
अति दरिद्र थे, भूमिहीन थे
करते थे मेहनत–मजदूरी,
मालिक लोगों के अधीन थे
भूमि–हरण बर्दाश्त कर गए
चुप्पी साधी मार–पीट पर
गुस्सा तब भड़का, बहुओं की
इज्जत जब लूटीं घसीट कर
फिर तो वे सातों के सातों
बने भेड़िया, बाघ हो गए
पुरखे तक धरती पर उतरे
जन्म–जन्म के पाप धो गए।'' [12]

जहालत की सीमा पार हो जाने के बाद शोषित आपने प्राणों की परवाह भी नहीं करता। भूमि जाने, मरने–पीटने तक वह चुप रहा किंतु उसकी ही ऑखों के सामने जब उसकी बहू–बेटियों की इज्ज्त लूटी जाती है तो भला यह कैसे सहन हो सकता है और जब वह भूखे बाघ की तहर दुश्मन पर टूट पड़ता है तो नागार्जुन उसे न्यायोचित ही समझते हैं। यह दरिद्र जन अपने 'स्व' की रक्षा पर उतर आता है, तब वह सब कुछ मिटा देना चाहता है ताकि सदा–सदा के लिए इस शोषण का अंत हो जाए। इस सब के पीछे नागार्जुन की यहीं मनसा रही है कि दलित, शोषित तथा तिरस्कृत चरित्र आत्मसम्मान से जीना सीखें और स्वयं पर हो रहे अत्याचारों का प्रतिरोध करना सीखें।

भारतीय वर्ण व्यवस्था दलितों के शोषण का मुख्य कारण है और नेता, व्यापारी, जमींदार, बनिया, साहूकार, उच्चवर्ण के लोग सभी इस शोषण का अंग हैं। नागार्जुन जातीय आधार पर किसी से भेद–भाव नहीं रखते वह तो गुणों के आधार पर आदमी का मूल्यांकन करने के पक्षधर हैं। नागार्जुन सबकी स्वाधीनता एवं स्वतंत्रता के चिंतक हैं और यही समाज का वास्तविक ढांचा होना चाहिए न कि व्यक्ति का मूल्यांकन धर्म, वर्ग, जाति, भाषा, क्षेत्र आदि के आधार पर होना चाहिए। नागार्जुन की निम्न पंक्तियां उनके इस स्वस्थ दृष्टिकोण को प्रस्तुत करती हैं –

" यह कैसे होगा कि
दासों की संतान
दासता के गुणों का करती रहें बखान
अपने पूर्वजों की भांति?" [13]

नागार्जुन की ये पंक्तियां स्पष्ट करती हैं कि वे जातीय आधार पर व्यक्ति–व्यक्ति में भेद नहीं रखते। उन्होंने इस बात का स्पष्ट खंडन किया है कि दास का पुत्र दास ही हो, वह भी अपने पूर्वजों की भांति जीवन दासता में गुजार दें। हर व्यक्ति स्वतंत्र है और स्वतंत्रता पूर्वक जीवन जीना उसका मौलिक अधिकार है किंतु आज़ादी के इतने वर्षों बाद भी देश में समानता नहीं आ पाई। हमारे राजनेता समाज में समग्र क्रांति लाने का नारा लगा कर देश की जानता को दिवास्वप्न दिखाने के अलावा कुछ नहीं करते बल्कि सच्चाई तो आज भी यही है –

"अगले पचास वर्ष और बने रहें कूड़ों के ढ़ेर
भंगियों के जीवन में नहीं किंचिंत भी हेर–फेर
गल्लों के आढ़तिये मचाएं अधिकाधिक अंधेर
चुपचाप देते रहें पुष्ट चंदा अबेर–सबेर
बढ़ती जाए फिर भी समग्र क्रांति की टेर।" [14]

आजादी के इतने वर्षों के बाद भी हमारी सामाजिक व्यवस्था में कोई परिवर्तन नहीं आया। आज भी कूड़ा–कचरा उठाने का काम तथा सफाई का काम भंगी ही कर रहे हैं। हरिजनों को आज भी अछूतों का दर्जा मिला हुआ है। उसका मुख्य कारण यह है कि हमारे राजनेताओं ने अपने स्वार्थ के लिए सम्पूर्ण

भारतीयों को कहीं जातिगत आधार पर विभक्त कर रखा है, तो कहीं भाषागत आधार पर, तो कहीं क्षेत्रीयता के आधार पर। ये राजनीतिज्ञ पूंजीपतियों से समाज में परिवर्तन के नाम पर चंदा तो लूटते हैं लेकिन उस चंदे की राशि को चुनाव प्रचार–प्रसार में खर्च कर देते हैं। ये राजनीतिज्ञ, राजनैतिक दल, सामाजिक परिवर्तन के नाम पर भाषण तो दे सकते हैं लेकिन समाज में परिवर्तन नहीं ला सकते। इस लिए तो मार्क्स ने भी कहा है कि '' भारत की प्रत्येक क्रांति नारों की क्रांति होती है।''

आजादी के इन छः दशकों में दलित एक संगठित ताकत के रूप में न सही, किंतु एक शक्ति के रूप में दिखते हैं तो इस एक जुटता को वैचारिक एवं संगठित धरातल देने का काम बाबा साहब जैसे महापुरूषों ने किया है। उनके सतत् संघर्ष से दक्षिण में आज दलित राजनीति सिरमौर है, महाराष्ट्र में बिखरी होने के बावजूद एक बड़ी ताकत है। उत्तर प्रदेश में बहुजन समाज पार्टी के रूप में उसकी महत्वपूर्ण उपस्थिति है। मुख्य धारा के राजनीतिक दलों में आज दलित की उपेक्षा करने का साहस नहीं है।

संदर्भ सूची

1. *डॉ. रामचंद्र वर्मा–संक्षिप्त शब्द सागर–नागरी प्रचारिणी काशी पृ. 468*
2. *डॉ. रतन रानी मीनू–नवे दशक की हिंदी दलित कविता–पृ. 3*
3. *नागार्जुन – सतरंगे पंखों वाली – अकाल और उसके बाद– पृ. 32*
4. *नागार्जुन–खिचड़ी विप्लव देखा हमने–कब होगी इनकी दीवाली? पृ. 98–99*
5. *नागार्जुन – खिचड़ी विप्लव देखा हमने – हरिजन गाथा – पृ. 126*
6. *डॉ. रतन – नागार्जुन की काव्य यात्रा पृ. 37*
7. *डॉ. रतन – नागार्जुन की काव्य यात्रा पृ. 30*
8. *नागार्जुन – रत्नगर्भ – महाभिनि कृमण से पूर्व – पृ. 14*
9. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, कब होगी इनकी दीवाली पृ. 99*
10. *नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, जान भर रहे हैं जंगल में पृ. 157*
11. *नागार्जुन – खिचड़ी विप्लव देखा हमने – हरिजन गाथा पृ. 130*
12. *नागार्जुन – खिचड़ी विप्लव देखा हमने – कब होगी इनकी दीवाली पृ. 98*
13. *नागार्जुन – खिचड़ी विप्लव देखा हमने – हकूमत की नर्सरी पृ. 74*
14. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, अगले पचास वर्ष और पृ. 19*
15. *दैनिक जागणरण – 19 अप्रैल 2010 पृ. 04*

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
वर्ष 22, अंक 85–86, अप्रेल–सितम्बर, 2016 पृ. 55–64 ***ISSN 0974 -1100***

डॉ. अम्बेडकर समता मूलक समाज : चुनौतियाँ एवं समाधान

डॉ. रमा पांचाल

यह समाज : जिसे किसी अज्ञान शक्ति ने अथवा यह कहें कि प्रकृति ने एक समान गढ़ा है जिसमें स्त्री पुरूषों को एक समान 'जीव' देकर दोनों में समानता से सुख–दुःख महसूस करने की पीड़ा का अहसास करने की ताकत दी है । एक समान पसंदगी, एक समान नाराजी प्रकट करने की भाषा, बोली, संकेतों से अभिव्यक्ति की शक्ति प्रदान की है, दो पांवो पर चलने और दसों इंद्रियों का समय–समय पर उपयोग करने की वृत्ति दी है । जिसका विरोध न तथागत बुद्ध ने किया, न प्रभु ईसु ने किया, न अल्लाह ने किया, न मार्क्स या न संत कबीर ने किया न राष्ट्रपिता महात्मा ज्योतिबा फुले ने, न राष्ट्रमाता सावित्री बाई फुले ने या न माता गार्गी, मैत्रयी, लोपा, मुद्रा, घोषा अथवा डॉ. अम्बेडकर ने किया उस भारतीय समाज में असमानता का बीजारोपण किसने किया ? उपरोक्त महान हस्तियों में से किसी ने भी समानता का विरोध नहीं किया न अपने जीवन काल में असमानता का किसी भी स्तर पर, किसी भी जीवन के साथ व्यवहार किया तब यह सोचने, समझने देखने और परख कर खोज तो करना पड़ेगी कि आखिर यह कौनसी फितरत है, जिसने मानव मानव में अनेकता के भाव पैदा किये ? कौनसी ऐसी नालायक कौम, समूह अथवा ज्ञात अज्ञात कुटुम्बक है जिसने इस स्त्री–पुरूष के बीच भेदभाव कायम किये ? जब सबका जन्म माता के उदर से एक ही समयावधि में एक ही मार्ग से होता है तो फिर उनमें असमानता या ऊँच–नीच की भावना किसने उत्पन्न की ? इसी तथ्य को संत कबीर ने कहाकि –

एक राह तो सब जग उपजा को बामन को शुद्रा ?

पिता ऊँचा और माता नीच कैसे हो गई ? माता कम और पिता अधिक महत्वपूर्ण कैसे हो गया ? एक को सभी सुविधा दिये जाने का आदेश और दूजे को हर प्रकार की सुविधा से वंचित रखने का हुकुम किसने और क्यों दिया । पुरूष को शिक्षित करने और स्त्रियों को अशिक्षित रखने की आज्ञा किसने और क्यों दी ? इन सभी प्रश्नों का जब तक निश्पक्षता से शोध नहीं किया जाता तब तक किस चुनौती और किस समाधान की बात की जावे ? और किस समाज की रचना समतापूर्वक की जावे ? जबकि इस देश भारत में सैकड़ों नहीं हजारों समाजों का निर्माण किया जा चुका हो तब किस समाज की स्थापना का बीड़ा उठाया जावे ? जहाँ जातियाँ बना दी गई हो और आगे भी उनके जातियों के निर्माण की प्रक्रिया जारी हो तब क्या समता मूलक समाज का अभाव स्वतः ही भारतीय संवधिान के समक्ष एक बहुत बड़ी चुनौती नहीं है ?

तथागत गौतम बुद्ध ने कहा है कि विश्व में यदि कोई समस्या है तो उस समस्या का कोई न कोई कारण अवश्य है और यदि किसी समस्या का कोई कारण है तो उसका निवारण अर्थात समाधान भी है । समस्या को जांचने के आधार भी होते हैं जिनकों सत्य और तथ्य पर जांचा जा सकता है । सत्य एवं तथ्य की कसौटी होगी तर्क । यदि कोई सत्य तथ्य व तर्क की कसौटी पर या वैज्ञानिक स्तर पर समयानुकूल खरा नहीं उतरता है तो वह अमान्य किया जा सकता है । उस पर कोई ध्यान नहीं देता है । इस देश में विद्यमान 125 करोड़ में से 100 करोड़ लोग गरीबी और बेरोजगारी से उत्पन्न सामाजिक समस्याओं से जूझ रहे हैं । आम आदमी अपने परिवार के लिये मकान, इलाज अपने बच्चों की सही शिक्षा के लिये संघर्ष कर रहा है, हमारे देश का राजनैतिक नेतृत्व मंदिर–मस्जिद के कभी न खत्म होने वाले विवाद और विक्षिप्त बहस में उलझा हुआ है ।[1]

यदि वास्तव में समस्या गरीबी, बीमारी, बेराजगारी, शिक्षा विहीनता, आवास, सामाजिक असहिष्णुता जैसे अनेक मुद्दों को लेकर है तो, इनके कारण भी है और बौद्ध धम्मानुसार इनके निराकरण भी मौजूद है । लेकिन सन् 1947 के पूर्व से कुछ संगठनों ने आपस में मिलकर देश में साम्प्रदायिकता के वातावरण का

निर्माण कर दिया है । इन संगठनों ने न तो कभी राष्ट्रीय भावना को महत्व दिया न कभी आम लोगों के दुख दर्द की परवाह की उन्होंने केवल अपने अपने अहं की पुष्टि की, राजनीति को जन्म दिया है । राष्ट्रीयता के नाम पर भारतवर्ष के भोले–भाले, सीधे–सच्चे मूल वासिन्दों के साथ छल कपट की राजनीति को अंजाम देकर अपने स्वार्थ की रोटियाँ सेंकी है । जब दोनों की राजनीति की जड़े ही असमानता पर टिकी हुई तब डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर द्वारा प्रस्तुत संविधान में किये गये समता मूलक समाज के निर्माण में चुनौतियों की कमी कैसे हो सकती है । गणतंत्र की स्थापना 1950 के पहले से ''सवर्णों ने नेहरू कमेटी के नाम से अपने लिये मलाईदार पद एवं प्रान्तों को संरक्षित कर लिया था । अपनी राजनैतिक सत्ता को बरकरार रखने के लिये नेहरू कमेटी ने अब्राम्हणों से छल किया ।'' परस्पर व्यवहार की गलती का बुरा परिणाम व्यक्ति पर पड़ता है और उचित समय पर उसमें सुधार नहीं हुआ तब भी वह कुछ दिन चल सकता है । लेकिन राज्य व्यवस्था के सर्वव्यापि व्यवहार की गलती हो गई तो उसके परिणाम सारे समाज को भोगने पड़ते हैं । इसलिये सही समय पर सुधार करना आवश्यक हो जाता है ।[2]

तथागत गौतम बुद्ध का भारतीय प्राचीन इतिहास में आगमन एक मानवीय समाज सुधारक के रूप में होना और यज्ञ हिंसा (मानसिक एवं शरीरिक दोनों) के विरूद्ध किये गये आन्दोलन को विश्वभर में समानता के लिये किये गये (उठाये गये) कदम के लिये मान्य किया जाता है । किन्तु भारत देश में उनके, महापरिनिर्वाण के बाद आज तक कोई तवज्जों नही दी जा रही है । जिसके कारण देश के बहिष्कृत समुदाय असमानता के शिकार हो रहे हैं । उन्हें आजादी के पश्चात और गणतांत्रिक व्यवस्था के 69 वर्षों बाद भी संवैधानिक समतावादी समाज रचना के दर्शन नहीं हो पाये हैं । वे समुदाय आज भी सामाजिक अन्याय के शिकार बनाये जा रहे हैं ।

सामाजिक न्याय लोक कल्याणकारी राज्य का आधारभूत तत्व होने के साथ साथ किसी भी कृत्रिम आधार पर किसी के भी प्रति भेदभाव किये जाने की मनाही करता है । यह ऐसी ताकतों को ऐसी कृत्रिम सामाजिक बाधाऐ पैदा करने से रोकता है जो समाज के दबे कुचले और शोषित नागरिकों को आगे बढ़ने से

रोकती है या उन्हें अपमानित करती है । किसी पिछड़े हुए देश में सामाजिक न्याय प्राप्त करने के लिये राज्य का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह समाज के कमजोर वर्गों के लोगों के उत्थान हेतु विशेष उपाय करें ।[3]

यहाँ पर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि बिना सामाजिक न्याय के समता मूलक समाज रचना कैसे संभव हो सकती हैं ? जब सम्पूर्ण भारत सामंतवादी मानसिकता की जकड़न में है तब समता मूलक समाज का सपना देखना भी गवारा न हो और जहाँ संवैधानिक व्यवस्थाओं को बड़ी चतुराई से षड़यंत्र कर के नकार दिया गया हो तब केवल समानता की बाते ही की जा सकती हैं । उन्हें केवल मीडिया में ही उछाला जा सकता है । वास्तविक धरातल पर उतारना एक बहुत बड़ी चुनौती है । अतएव स्पष्ट है कि बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर की समता मूलक समाज रचना का सम्पूर्ण मार्ग चुनौतियों से आच्छादित है ।

प्रमुख चुनौतियाँ : वर्णव्यवस्था –

अंग्रेजों द्वारा सत्ता हस्तान्तरण के पूर्व से ही चातुरवर्णय समाज व्यवस्था के ठेकेदारों ने षड़यंत्रपूर्ण बैठके करके निश्चित कर लिया था कि ''डॉ. अम्बेडकर की मांग से सवर्ण और अछूत लोग राजनीतिक में एक होने वाले हैं और सवर्णों को यही नहीं चाहिये । क्योंकि राजनीति में अछूत समाज के समानाधिकारी होने में सवर्णों के चातुर्वर्णात्मक सनातन धर्म की मौत है । एक वर्ग का दूसरे वर्ग पर वर्चस्व रहना यही इस चार्तुवर्ण का रहस्य है । इस चातुर्वणी के विरोध में आजतक कई बार विद्रोह हुए हैं ।''[4] और यदि डॉ. अम्बेडकर की मांगे अंग्रेजों ने मान ली होती तब तो सवर्णों की सोच में यह 'सनातन धर्म' रसातल में चला जावेगा । ''क्योंकि जाति हिन्दू का धर्म है इसी के समर्थन में हिन्दू शास्त्रों पुराणों, रामायण, महाभारत आदि महाकाव्यों और काव्यों की रचना हुई है । इन्हें त्याग देने से हिन्दू, हिन्दू ही नहीं रहेगा ।[5]

सनातन धर्म को बचाने के लिये मुठ्ठी भर लोगों ने असमानता को बनाये रखने का बीड़ा उठा लिया था । इसके लिये उन्होंने अपने सवर्ण समाज में से कुछ प्रतिमाओं को शहीद करने की योजना भी कुछ सवर्णों के हाथों से हत्या करने की गोपनीय योजना बना ली थी। जिसके लिये बकायदा ''शहीद'' का खिताब अर्पण करने की सोच भी बनायी जा रही थी । इसी के अन्तर्गत कांग्रेस

के धुरन्धरों के हाथ में गांधी जैसा ''अफ्रीका का (10 वीं पास के बाद में वकील बना) असफल वकील गांधी हाथ लग गया तो दूसरी और हिन्दुत्व का कट्टर समर्थक नाथूराम गोड़से मिल गया था । हिन्दी दैनिक जनसत्ता को अपने एक इंटरव्यू (7 जून, 1998) में लालकृष्ण आडवाणी ने दावा किया कि विभाजन से पहले गांधी और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में कुछ नेताओं द्वारा प्रस्तुत सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के केवल वे ही वारिस हैं । इसी तरह से एक गंभीर स्वर में मलकानी (1998) ने कहाकि कांग्रेस चुनाव इसलिये हारी क्योंकि उसने देश और धर्म को उस समय त्याग दिया जब भारत अपने मूल की ओर लौट रहा था । उन्होंने फ्रांसिसी लेखक आमौरी के इस कथन का समर्थन किया, भारतीय अवाम उस पार्टी का दिल से साथ देंगे जो शाश्वत् हिन्दू धर्म के कुछ पहलुओं से उद्भूत होगी । कल यह गांधीवाद के रूप में थी आगे यह आर.एस. के रूप में होगी ।''[6]

यहाँ यह विचारणीय मुद्दा है कि फ्रासिंसी लेखक आमौरी द्वारा कहे गये कथन में शाश्वत हिन्दू धर्म के कुछ पहलुओं से उद्भूत होगी । उसी का साथ अवाम देगी तो वे उद्भूत पहलू मात्र (1) चातुर्वर्ण्य व्यवस्था (1) छुआछूत अशिक्षा तथा (1) असमानता ही है जिन पर आर्य ब्राम्हणी जाति व्यवस्था चिरस्थायी है । इसलिये 85 प्रतिशत के हाथों में अंग्रेजों द्वारा हस्तान्तिरित सत्ता की बागडोर नहीं जाने दी जावे इसके पूर्ण प्रबन्ध पूर्व से ही कर लिये गये थे । डॉ. अम्बेडकर अंग्रेजों की दृष्टि में सर्वप्रकारेण योग्यतम मनीषी थे इस बात को कांग्रेस ने अच्छी तरह समझ लिया था । इसलिये स्वतंत्रता से पूर्व उनकी शैक्षिक योग्यता को किसी भी रूप में नकारना इन हिन्दूत्ववादियों के लिये आजादी का रोड़ा बन गया था । वैसे उनके निशाने पर तो पहले से ही डॉ. अम्बेडकर, गांधी और गोडसे थे ही । किन्तु साध्य पूर्ण होने तक का इंतजार भी आवश्यक था । इसलिये खिलाफत के प्रत्येक कदम को गोपनीय रखा गया था । हिन्दू धर्म (पूर्व कालीन ब्राम्हण धर्म) के हित में ही सभी कदम उठाये जाना थे । अतएव समता मूलक समाज रचना को चातुर्वर्णियों ने असफल बनाने का बीड़ा उठा लिया था ।

''यदि समानता को आधार बना कर दलित वर्ग के हाथ में सत्ता गई तो यह चार्तुवर्णी द्वारा निर्मित असमानता धूल में मिल जावेगी, इसमें कोई सन्देह नहीं । यह असमानता आज तक कायम रही इसका कारण है । राज सत्ता ने

उस पर कभी भी प्रहार नहीं किया है । उस पर राजसत्ता की हमेशा मेहरबानी रही है । उस पर हिन्दू राजाओं की मेहरबानी तो थी ही लेकिन मुस्लिम राजाओं की भी थी । अंग्रेज तो महाधूर्त लोग थे । उन्होंने दलित जनता को ऊपर न उठने देने के लिये चातुर्वर्ण व्यवस्था में जो सबसे श्रेष्ठ वर्ण है ब्राम्हण उसी में राजनीतिक सत्ता की खैरात बांट दी । डॉ. अम्बेडकर की मांगे सफल हो गई तो चातुर्वर्ण व्यवस्था की यह इमारत पूरी तरह से ढह जाएगी ।''[7]

25 अप्रैल, 1948 को बाबा साहब ने लखनऊ में कहा था कि वर्णव्यवस्था के कलह के विद्यमान रहते ''अंग्रेजों ने हमें अधबीच में छोड़ दिया है ।'' स्पष्ट है कि इस वर्ण व्यवस्था की कायमी ही डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर के समता मूलक समाज रचना की सबसे बड़ी बाधा और प्रमुख चुनौती है ।

पाखंड, अंधविश्वास, संगठन का अभाव, संघर्ष शक्ति की कमी, ब्राम्हणवादी सोच और उनके द्वार बहकावा, काल्पनिक भावनाओं/देवी देवताओं के पीछे भागने की वृत्ति आदि ।

अशिक्षाः समता मूलक समाज रचना की चुनौती है –

डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर ने अपने तीन मूल मंत्रों में शिक्षा को प्रथम मूल मंत्र कह कर ''शिक्षित बनों'' का नारा बुंलद किया था । क्योंकि उनके तीन गुरूओं ने शिक्षा के महत्व को स्वीकारा था । सतं कबीर ने कहा है कि

दुनिया में है तीन रतन विद्या बुद्धि अरू विवेक ।
विद्या बिन नहीं पाओगे समता प्रेम अरू शील ।।

प्राचीन भारत में वेद पूर्व आमजन के लिये शिक्षा के द्वार खुले हुए थे । इस लिये कहा गया है कि

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ।।[8]
(ऋग्वेद 10,191)

अर्थात् एक स्थान पर जाओ, बातचीत करो, अपने मन एक करों । जिस प्रकार पहले के विद्वान अपने निश्चित कर्त्तव्यों की पूर्ति के लिये एकत्र होते थे उसी प्रकार तुम भी एकत्र हो । इस मंत्र में किसी जाति विशेष के लोगों के लिये नहीं वरन् सभी जनों के लिये आदेश किया गया है । यहाँ सवर्ण अवर्ण की बात

नहीं की गई है न ही शिक्षित या अशिक्षित की बात कही गई हैं । शिक्षा पर कोई पाबंदी नहीं थी । जनक के दरबार के शास्त्रार्थों में तो विदुषी महिलाओं द्वारा किये गये शास्त्रार्थ प्रसिद्ध है ।

वेदकाल में ऊँच नीच, श्रेष्ठ जैसी भावना नहीं थी । मंत्रदृष्टा ऋषि समता, बन्धुता और स्वातंत्र्य के तत्वों के उपासक थे ।'' समता से सम्बन्धित एक मंत्र में कहा गया है –

अज्येष्ठा सो अकनिष्ठास एते ।
सं भ्रातरों वासुधुः सौभगाय ।।
ऋग्वेद 5/60/5
एक अन्य मंत्र में कहा है कि
ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास उद्भिदो ।
अमध्यमासो महसा बिबावृधुः ।।
ऋग्वेद 5/9/6

भावार्थ यह है कि ''न कोई बड़ा है न कोई छोटा है और न ही मध्यम है । सब एक दूसरे के बन्धु है । उत्तम भाग्य प्राप्त करने के लिये सभी वर्धमान हो रहे हैं । सिद्ध है कि वेद काल में समाज की रचना समता और बन्धुता के तत्वों पर हुई थी ।''[9]

शुद्र को बुद्धि (शिक्षा) नहीं देना, न यज्ञ का उच्छेष्ट और न होम बचा हुआ भाग और न धर्म का उपदेश ही देना चाहिये । ''यदि कोई शूद्र वेदमंत्रों को सुन लेता है तो उसके कानों में सीसा या लाख भर दिया जाना चाहिये । यदि वह वेद का नाम लेने का साहस करें तो उसके शरीर को तोड़–फोड़ दिया जावे ।''[10]

मनुस्मृति में तो वेद मंत्रों का उच्चारण करने मात्र से शूद्र की जबान काट लेने का आदेश दिया गया है । इस तरह से आर्य ब्राम्हणों ने भारतवर्ष के मूल वासिन्दों को शिक्षा से वंचित किया ।

''कई शताब्दियों तक ब्राम्हणों ने भारत की बहुसंख्यक जनता को शिक्षा प्राप्त करने व धर्मसूत्रों को पढ़ने के अधिकारों से अनभिज्ञ रखा और केवल ब्राम्हण जाति तक ही शिक्षा का क्षेत्र रखा था ।''[11]

इस लम्बी अवधि की निरक्षरता के कारण देश के आदि–निवासी अज्ञान के अंधकार के राही बनाकर अंधविश्वास, काल्पनिक देवी–देवता, भूत प्रेत, डाकन चुडैल आदि के भय में डाल दिये गये । उन्हें मानवीय कमजोरी में स्थापित करके समता मूलक समाज रचना के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा में डाला है जो आज एक जटिल चुनौती बनकर भारतीयों के सामने विषमता की चौड़ी खाई बनी हुई है । इसकी आड़ में आर्य ब्राम्हणों ने अपनी मुफ्त की रोटियाँ तोड़ने की सुविधा बना ली है । इसीलिये यूरोपीय विद्वानों ने भारतवर्ष के वास्तविक इतिहास की खोज की और उसे फिर से लिपिबद्ध करने का कठिन कार्य प्रारंभ किया । उन्होंने पाया कि ''भारतवर्ष की संस्कृति वास्तव में निरक्षरता और इतिहास के प्रति अज्ञानता की संस्कृति हैं । ब्राम्हणवाद विद्वानों की संस्कृति शिक्षा संकोचक की संस्कृति है । इस वजह से बीसवीं शताब्दि के पूर्व अर्थात अंग्रेजों द्वारा विद्या शिक्षा–प्रसार बाध्यता मूलक किये जाने के पूर्व ब्राम्हणवादी भारत में साक्षर व्यक्तियों की संख्या दो प्रतिशत से अधिक कभी न हो सकी । विद्या–शिक्षा पुस्तकादि रचना में भारतीय उदासीनता जग जाहिर है ।''[12]

आर्य ब्राम्हणों ने इस अशिक्षा को ही भारतवर्ष के बहिष्कृत समाज की अवनति का दूसरा प्रमुख कारण बना दिया । उन्हें अलगाव और मौन की संस्कृति में ढाल दिया जाना समतामूलक समाज रचना की सबसे बड़ी बाधा बन कर उभरी । इसलिये बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर को भारतीय संवधिान में अंत्याजों की शिक्षा व्यवस्था हेतु मूल अधिकरों के अन्तर्गत अनुच्छेद 29 (1) (2) एवं अनुच्छेद 30 (1) (2) का प्रावधान करना पड़ा । इन्ही मूल अधिकारों में उन्होंने समता के सन्दर्भ में अनुच्छेद 14 से 18 तक लिख दिये हैं तो अनुच्छेद 19–22 तक स्वतंत्रता और अनुच्छेद 23–24 में शोषण के विरूद्ध अधिकार प्रदान करके कमजोर तथा शोषित वर्गों को अधिकार दिये हैं ।[13]

किन्तु बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर के द्वारा भारतीय संविधान के इन प्रावधानों सहित सम्पूर्ण संविधान को ही हाशिये पर धकेलने का कम विगत 68 वर्षों की आर्य ब्राम्हणी सत्ता ने कर दिया है । इसलिये समतामूलक समाज रचना की चुनौतियों में आज संवैधानिक प्रावधानों को लागू न करना भी एक बहुत बड़ी चुनौती बन गई है ।

समाधान

ब्राम्हणवाद का परित्याग संघर्ष शीलता पैदा करना, किसी के बहकावे में नहीं आना, तार्किकता पैदा करना, अंध विश्वास छोड़ना, समाज के शुभचिंतकों की बातों पर विश्वास करना, काल्पनिक भगवानों/देवी देवता पर विश्वास न करना, संगठित रहना, नशा न करना, पाखंड न करना । विस्तृत विवरण न देते हुए यदि मैं कहूँ कि समता मूलक समाज रचना की चुनौतियों का एक मात्र समाधान यह है कि प्रजातांत्रिक भारत में भारतीय संविधान को उसके प्रियंबल से लेकर अन्तिम अनुच्छेद तक को वास्तविक धरातल पर लागू करवा दिया जावे तो अतिश्योक्ति नहीं होगी । भारत का बहुसंख्यक समाज देश के किसी न किसी कोने में पीड़ित किया जा रहा है । इसलिए संविधान का लागू होना अनिवार्य है । शोषकों को कठोर दण्ड और पीड़ितों को समय पर सामाजिक न्याय प्रदान करना भी जरूरी है ।

ईश्वरीय समाज व्यवस्था कहकर इनका प्रचार बन्द नहीं जब तक इन दुष्मनोवृत्ति के लोगों द्वारा किया जाता और पाखंड पूर्ण ब्राम्हणी कृत्यों पर संविधाान में वर्णित अनुच्छेदों के माध्यम से कानूनी तौर पर कठोरता से रोक नहीं लगाई जाती तब तक बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर के समता मूलक समाज रचना के स्वरूप को मंजिल मिलना मुश्किल है । दूसरा समाधान यह है कि बहिष्कारों की समस्याओं के समाधान तथा समता मूलक समाज रचना की बाधाओं को अर्न्तराष्ट्रीय मंचो पर उठाये जाने का सुझाव स्वयं बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर ने भी दिया हैं । अब वह आ गया है, क्योंकि आजादी की आधी सदी में भारत में विषमताएँ बढ़ी हैं और देश में असहिष्णुता का पूरा महौल तैयार कर दिया गया है । परंतु समता मूलक समाज की रचना बिना त्याग एवं संगठित संघर्ष के सम्भव दिखाई नहीं दे रही है । एक उक्ति प्रसिद्ध है कि ''जिस धर्म में समाज में और मानव समूह में समानता नहीं होती है वह सदैव किसी न किसी बाहरी शक्ति का गुलाम बना रहता है ।''

❐

सन्दर्भ –

1. *साम्प्रदायिक राजनीति : तथ्य एवं मिथक पृ. 13 रामपुनियानी*
2. *बाबा साहब ने कहा : बहिष्कृत भारत 18 जनवरी 1929 अग्रलेख*

3. सामान्य अध्ययन : प्रतियोगिता दर्पण सितम्बर 1998/226
4. समानता के लिये असमानता– बाबा साहब ने कहा– बहिष्कृत भारत फरवरी, 1929
5. चन्द्रिका प्रसाद जिज्ञासु, बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर के 15 व्याख्यान पृ. 70
6. रामपुनियानी, साम्प्रदायिक राजनीति : तथ्य एवं मिथक पृ. 58
7. बाबा साहब ने कहा – समानता के लिये असमानता – बहिष्कृत भारत पृ. 33 अग्रलेख
8. ऋग्वेद 10,191
9. पं. श्रीपाद दामोदर सोनवलेकर, स्पर्शात्पर्श विचार प्रकरण 4
10. गौतम धर्म सूत्र XII–4,5
11. प्रदीप कुमार आर्य, भारत वर्ष की गुलामी के बाइस सौ साल– हिन्दू संस्कृति की देन पृ. 125
12. एस.के.विश्वास, भारत केमूल निवासी और आर्य आक्रमण पृ. 10
13. भारतीय संविधान भाग 3 पृ. 7 से 22

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
वर्ष 22, अंक 85–86, अप्रेल–सितम्बर, 2016 पृ. 65–69 ***ISSN 0974 -1100***

चिकित्सा विभाग में संगठन की भूमिका

डॉ0 सरिता पाल

संगठन में बहुत से व्यक्ति किसी निहिचित उद्देश्य की प्राप्ति हेतु कुछ कार्य सम्पादित करते हैं । व्यक्तियों के सामुहिक प्रयासों तथा उनकी प्रक्रियाओं को प्रायः संगठन के नाम से सम्बोधित किया जाता है । संगठन केवल सरकारी तन्त्र में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण मानव–समाज में व्याप्त है । संगठनों का आकार , प्रभावशीलता तथा स्थायित्व उनके उद्देश्यों तथा निर्धारित नियमों सहित संगठन में कार्यरत व्यक्तियों के पारस्परिक सहयोग पर निर्भर करता है ।[1]

व्यक्तियों की पहचान करने के लिए आज हम यह देखते हैं कि वे किस प्रधान संगठन के सदस्य है ।'' औद्योगिकरण विज्ञान के प्रसार द्वेतीयक सम्बन्धों की प्रधानता तथा विरोधीकरण ने संगठनों का महत्व बढ़ा दिया है । आज का युग ''मानव संगठन'' का युग है कि आधुनिक भौतिकवादी युग में मनुष्य की व्यक्तिगत छवि संगठन की, छवि तथा उसके सदस्यों का उससे जुड़ाव एवं कार्य अवधि अधिक महत्वपूर्ण हो गई हैं । लोक प्रशासन ही नहीं बल्कि सभी सामाजिक संस्थाओं की जिज्ञासा तथा चिन्ता का मुख्य विषय ''संगठन'' ही है ।[2]

संगठन क्या है –

'संगठन' शब्द को कई अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है 'संज्ञा' के रूप में *Organisation* शब्द को इसके क्रियात्मक स्वरूप *To Organise* से समझा जा सकता है । जिसका अर्थ है – आयोजित करना या व्यवस्थित करना या तैयार करना या चालू अवस्था में रखना । इस प्रकार कुछ चीजों या अंगो या व्यक्तियों या कार्यो का प्रभावी ढंग से समायोजन है ।[3]

चिकित्सा संगठन शब्द के सामन्यतया निम्नांकित अर्थ है –

चिकित्सा संगठन एकीकरण या सामूहिकता का नाम है जिसमें हम कहते है संगठन ही शक्ति है अतः मिलजुलकर रहो । चिकित्सा संगठन किसी संस्था या संघ को भी कहा जाता है, जैसे विश्व स्वास्थ्य संगठन चिकित्सा संगठन, किसी प्रशासनिक संरचना के प्रारूप को तैयार करने के कार्य को भी कहा जाता है (जैसे– मंत्रालय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण) ।

चिकित्सा संगठन किसी प्रशासनिक संचरना के अन्तर्गत निर्धारित कार्यों या प्रक्रियाओं के संचालन को भी कहा जाता है । (जैसे– पल्स पोलियों प्रतिरक्षण कार्यक्रम का आयोजन) चिकित्सा संगठन, संरचना का भी पर्याय होता है ।

पौराणिक ऐतिहासिक चिकित्सा का विकास –

किसी भी संगठन की आवश्यकता कार्य को सम्पादित करने के समय उत्पन्न होती है । अर्थात संगठन किसी न किसी कार्य को पूरा करने हेतू बनाये जाते हैं । बहुत से विद्वानों की मान्यता है, संगठन का विकास या निर्माण दर्जी के कार्य के समान है जो कपड़े से कोट बनाते समय काटो और सिलाई कर दो, की रीति अपनाता है । इसी प्रकार संगठन का विकास होता है ।

सर्वप्रथम भारत में सामाजिकता का इतिहास खोजा माना जाता है । हड़प्पा नामक स्थान ही एक ऐसा स्थान है जिसमें अनेक प्रकार की संस्कृति पाई गई है । 1400 बी.सी. पूर्व भारत में आर्यन्त ने आक्रमण किया । आर्यन्त के आक्रमण के समय हमारे यहॉ आयुर्वेद एवं सिद्ध प्रणाली ही प्रचलन में थी । आयुर्वेद एवं जीवन विज्ञान ने स्वास्थ्य को समझने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया था ।

भारत में पौराणिक चिकित्सा संगठन :–

(1) वैदिक काल :– 1600 ईसा पूर्व 600 ईसा पश्चात वैदिक काल में स्वास्थ्य संबंधी शिक्षा जैनियों व बौद्ध धर्म के लोग स्वास्थ्य संबंधी शिक्षा तक्षशिला एवं नालंदा के विश्वविद्यालय में प्रारम्भ की गई थी । जिनमें मुख्यरूप से पंचक्रिया एवं प्राणीरोग–विज्ञान के बारे में शिक्षा प्रदान की जाती थी । 650–1850 ईसापूर्व :– इस काल को मूगलों का काल कहा जाता है । इस काल में मूगलों ने अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया था । मूगलों ने भारत पर अपना साम्राज्य 1000 वर्ष

तक बरकरार रखा । इस काल में जो औषधियॉ चलती थी । उसमें अरबी औषधियों का प्रयोग किया जाता था । जिसे यूनानी प्रणाली के नाम से प्रारम्भ किया गया जिसे भारतीय प्रणाली से जोड़ दिया गया ।

ब्रिटिश कालः– इस काल को हम पूर्णतः उन्नति काल या विकासात्मक काल कह सकते हे। क्योंकि यही काल एक ऐसा काल था जिसमें अनेक प्रकार की नई खोजें, अविष्कार एवं प्रणालियों की जगह धीरे–धीरे आधुनिक प्रणालियों ने ले लिया । अतः इस काल में अनेक ऐसी खोजें की गई जिसके चलते अनेक नए–नए उपकरणों को प्रयोग में लिया जाने लगा ।

आधुनिक चिकित्सा संगठन का विकास :–

चिकित्सा, विज्ञान के विकास के प्रथम चरण में बीमार होते व्यक्ति की दशाओं को अंकित किया जा सकता है । अनेक विकास आधारित कार्यक्रमों व अनेक ऐसी समितियों का विकास किया गया जिसके चलते स्वास्थ्य सेवाओं का दिनों–दिन विकास संभव हो सका ।

भोर समिति :– 1943 में भारत सरकार ने देश में उस चयन विद्यमान स्वास्थ्य की स्थिति और स्वास्थ्य संगठनों के सर्वेक्षण तथा भावी विकास के लिए सिफारिश करने हेतु स्वास्थ्य सर्वेक्षण एवं विकास समिति या जिसे भोर समिति भी कहा जाता है ।

चड्ढा समिति :– चडढ़ा समिति ने 1963 में प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र के उपकेन्द्रों के अन्तर्गत 10000 से अधिक जनंसख्या नहीं होना चाहिय जिसमें अंतिम लक्ष्य 5,000 होना चाहिये तथा स्वास्थ्य निरक्षक होना चाहिये और जिला स्वास्थ्य संगठन को सुदृढ़ किया जाना चाहिये ।

मुकर्जी समिति :– 1966 में ब्लॉक स्तर पर उपलब्ध किए जाने वाली मूलभूत स्वास्थ्य सेवाओं के विवरण तैयार किये जाने चाहिये ।

करतारसिंह समिति :– स्वास्थ्य और परिवार नियोजन के लिए बहुउद्देशीय कार्यकर्ताओं के प्रश्न पर विचार करने के लिए भारत सरकार द्वारा 1972 में भी करतारसिंह समिति आयोजित की गई ।

श्रीवास्तव समिति :– सन् 1994 में चिकित्सा शिक्षा और समर्थक मानव शक्ति पद दल स्थातिप किया ।

विश्व स्वास्थ्य संगठन :– विश्व स्वास्थ्य संगठन जिसे हम डब्ल्यू एच ओ के नाम से भी जानते है । चिकित्सा क्षेत्र में सबसे बड़ी उपलब्धि मानी जाती है । जिसकी उत्पत्ति 1945 में एक सम्मेलन द्वारा सेन्ट फ्रांसिसकों में हुई थी । इसकी स्थापना ब्राजील व चीन के प्रतिनिधियों ने अपना प्रस्ताव दिया कि अन्तर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य संगठन की शुरूआत होना चाहिए । विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा सभी लोग एक स्वास्थ्य सेवा पा सके जो कि विश्व स्वास्थ्य संगठन के संविधान में लिखा है । इसके उद्देश्य सब लोगों द्वारा स्वास्थ्य के उच्चतम स्तर को प्राप्त करना है ।

देश में स्वास्थ्य शिक्षा कार्य में सक्रिय अन्य विरोध एजेन्सियॉ भी है । जैसे विज्ञापन और दृश्य प्रचार निदेशालय, सूचना विभाग, आकाशवाणी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वास्थ्य शिक्षा का अन्तर्राष्ट्रीय संघ है । जिसका मुख्यालय पेरिस में है । इसका मुख्य कार्य स्वास्थ्य शिक्षा के लिये राष्ट्रीय कमेटियों और संस्थाओं के गठन को प्रोत्साहित करना है ।

निष्कर्ष :–

प्रत्येक प्रकार के प्रशासन में चिकित्सा संगठन के प्रशासन का सदैव महत्व रहा है । वस्तुतः राज्य सरकार का मुख्य कार्य समाज में व्याप्त विमारियों की रोकथाम के लिए व्यवस्था करना होता है । जो कि चिकित्सा संगठन के प्रशासन के बिना असंभव है और इस चिकित्सा विभाग में प्रत्येक अधिकारी एवं कर्मचारियों का प्रशिक्षण न केवल उसकी कार्य कुशलता में वृद्धि हेतु बल्कि बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार दृष्टिकोण को व्यापक बनाने हेतु अनिवार्य रूप से आवश्यक है ।

किसी भी विभाग में कार्यरत व्यक्ति प्रभावशाली बनाने में उसमें कार्य कर रहे व्यक्तियों में आपसी सुझ–बूझ से ही उसमें विभाग की कार्यकुशलता को और अधिक सुदढ़ बनाया जा सकता है । मोटे तौर पर स्वास्थ्य संगठन चार स्तर के होते हैं । राष्ट्रीय स्वास्थ्य संगठन, राज्य स्तर के स्वास्थ्य संगठन, जिला स्तर के स्वास्थ्य संगठन एवं स्थानीय स्तर के स्वास्थ्य संगठन जिसके द्वारा लोक स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग का संगठनात्मक ढाँचे द्वारा आसानी से समझ सकते हैं ।

❐

सन्दर्भ –

1. *चेस्टर आई. बर्नार्ड –द फंगसन ऑफ एक्जीक्यूटीव, हार्वड यूनिवर्सिटी, प्रेस केम्ब्रिज 1981*
2. *लूथर मूलिक – नोडल ऑन थ्योरी ऑफ आर्गेनाईजेशन, लन्दन, 1957*
3. *पार्क के –सामुदायिक स्वास्थ्य विज्ञान, चतुर्थ संस्करण, जबलपुर पृ. 167*
4. *गर्वमेन्ट ऑफ इण्डिया (वॉयलेन्टरी हेल्थ आर्गेनाईजेशन एण्ड इण्डियन हेल्थ प्रोग्राम्मि) सेन्ट्रल हेल्थ एज्यूकेशन ब्यूरो, नईदिल्ली, 1961*

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
वर्ष 22, अंक 85–86, अप्रेल–सितम्बर, 2016 पृ. 70–83 ***ISSN 0974 -1100***

सामाजिक समरसता एवं भारतीय संविधान डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर का योगदान

डॉ0 रुपेश कुमार सिंह

वर्तमान भारतीय समाज में सामाजिक समरसता एक ज्वलन्त विषय है क्योंकि दिन–प्रतिदिन देश के विभिन्न राज्यों से धर्म, जाति, भाषा एवं क्षेत्रीयता पर आधारित तनाव, संघर्ष एवं हिंसा की सूचनाऐं विभिन्न प्रकार के संचार माध्यमों से लोगों को मिलती है । इस प्रकार की सूचनाओं के प्रसार के पश्चात समाज में नाना प्रकार की क्रियाऐं एवं प्रतिक्रियाऐं प्रारम्भ हो जाती है । यह विषय आज के समाज में नया प्रतीत होता होगा लेकिन समाज में इसकी जड़ें काफी गहरी है क्योंकि प्राचीन भारतीय समाज में लोगों को वर्ण व्यवस्था के आधार पर बाँटा गया और एक दूसरे को एक दूसरे से उच्च एवं निम्न स्थान जन्म के आधार पर प्रदान किया गया । इस प्रकार धीरे–धीरे इस व्यवस्था से जाति व्यवस्था का प्रादुर्भाव हुआ । जिसने समाज को जातीय आधार पर विभाजित किया । इससे जहाँ समाज में उच्च स्थान प्राप्त लोगों में वर्चस्व की भावना उत्पन्न होने लगती और उन्होंने निम्न जातियों या समाज में निम्न स्थान प्राप्त लोगों का शोषण प्रारम्भ कर दिया । जिससे धीरे–धीरे भारतीय समाज की समरसता बिखरने लगी । साथ ही साथ धर्म के आधार पर भी बौद्ध, जैन, हिन्दू धर्म तथा अनेक शासकों का भिन्न–भिन्न प्रकार के मतों में विश्वास के कारण समाज में सद्भाव समाप्त होने लगा । इस प्रकार हमारे समाज की साथ–साथ रहने की परम्परा, प्रेम एवं सहयोग की भावना का हास होने लगा । लेकिन समाज में सद्भाव बनाये रखने के लिए समय–समय पर सन्तों, महात्माओं, सूफियों आदि ने अपने उपदेशों एवं कार्यों द्वारा लोगों में विश्वास पैदा किया ।

सल्तनत एवं मुगल कालीन भारतीय समाज में इस्लाम का प्रचार–प्रसार आरम्भ हुआ जिसमें लोगों को बलपूर्वक धर्मान्तरण कराया गया । इससे हमारे समाज में आपसी सद्भाव टूटने लगा लेकिन इस समय भी सूफियों एवं सन्तों ने साझा–संस्कृतिक को स्थापित किया और लोगों को आपस में लड़ने एवं संघर्ष न करने का सन्देश दिया । इसी काल में अकबर ने धर्म के लिए सहिष्णुता की नीति अपनायी और अन्य धर्मों के लोगों से वैवाहिक एवं पारिवारिक सम्बन्ध स्थापित कर लोगों को जोड़ने का प्रयास किया । अकबर ने स्वंय अन्य धर्मो मजहबों की महिलाओं से विवाह किया । अकबर ने सामाजिक सद्भाव के माध्यम से अपने शासन का प्रसार किया । वह स्वंय इस्लाम में विश्वास करता था फिर भी उसके नवरत्नों में हिन्दू धर्म के मानने वाले बीरबल एवं टोडरमल मुख्य थे । अकबर ने अपने शासन काल में धार्मिक सहिष्णुता का एक अनोखा उदाहरण प्रस्तुत किया । वह था हिन्दू एवं इस्लाम धर्म से अलग एक नये धर्म दीने ए–इलाही का प्रवर्तन करना । इस धर्म को केवल एक हिन्दू बीरबल ने स्वीकार किया था । इस प्रकार अकबर के समय में भारतीय समाज में काफी समरसता थी और सभी लोग काफी मिलजुल कर रहते थे । लेकिन अकबर के पश्चात के शासकों विशेशकर औरंगजेब ने भारतीय समाज में बलपूर्वक धर्म परिवर्तन करवाना प्रारम्भ किया जिससे लोगों में आपसी वैमनष्य काफी बढ़ गया । इनके शासन काल में हिन्दुओं ने भय के कारण इस्लाम धर्म स्वीकार किया । इस प्रकार से हमारे समाज में आपसी भेदभाव, विद्वेष, उत्पीडन, शोषण इत्यादि बढ़ने लगा । इसके पश्चात भी मुगल काल में सामाजिक समरसता स्थापित करने के समय–समय पर प्रयास होते रहें क्योंकि इनके उदाहरण विभिन्न युद्धों से मिलते हैं जिससे लोगों ने सारे भेदभाव एवं विद्वेष को त्याग कर युद्ध में भाग लिया और आक्रांताओं को पराजित किया ।

मुगल काल के समय से हमारे देश में अंग्रेजो ने आना शुरू कर दिया था और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के माध्यम से देश में पैर जमाना प्रारम्भ कर दिया । ईस्ट इण्डिया कम्पनी मूलतः व्यापार के उद्देश्य से देश में आयी थी लेकिन उसने धर्म, जाति आदि के आधार पर विभाजित भारतीय समाज में फूट डालों, शासन करों की नीति अपना कर देश में सामाजिक समरसता को कमजोर कर दिया ।

इसका परिणाम यह हुआ कि कुछ वर्षों के पश्चात ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने शासकीय कार्यों में हस्तक्षेप कर शासन करना प्रारम्भ कर दिया । इस प्रकार उन्होंने बंगाल से अपने शासन को प्रारम्भ कर दिया । लेकिन समय–समय पर भारतीय समाज के समाज सुधारकों, महापुरूषों, सन्तों, महात्माओं आदि ने भारतीय समाज में समरसता एवं भाई–चारा स्थापित करने का प्रयास करते रहें ।

ब्रिटिश काल के दौरान अंग्रेजों ने पहले से धर्मों, जातियों, सम्प्रदायों आदि में विभाजित भारतीय समाज की कमजोरियों को समक्ष कर फूट डालों और शासन करों की नीति लागू कर शासन किया । लेकिन 1857 के विद्रोह में विभिन्न धर्मों एवं जातियों के लोगों ने मिलकर ईस्ट इण्डिया कम्पनी की नींव हिला दी थी और इस दौरान सामाजिक समरसता का अच्छा उदाहरण मिलता है । लेकिन 1857 के विद्रोह के पश्चात अंग्रेजों ने भारतीय समाज को बाँटने एवं आपस में लडाने का कार्य पुनः बंगाल विभाजन के द्वारा किया । इस विभाजन की घोषणा के पश्चात हिन्दू–मुसलमानों ने इसका विरोध किया । इसमें भी भाषा के आधार पर समाज में सद्भाव बना रहा कि सभी वर्ग के लोग बांग्ला भाषी है । बंगाल विभाजन के पश्चात भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस से अलग कुछ लोगों ने मुसिलम लीग की स्थापना कर मुसलमानों के लिए जनसंख्या के आधार पर अलग देश की माँग की बहस तेज कर दी । इससे अंग्रेजों की लोगों को धर्मों के आधार पर विभाजित करने में सहायता मिली और उन्होंने भारतीय समाज की वर्षों से चली आ रही सामाजिक समरसता को कमजोर कर दिया ।

ब्रिटिश कालीन भारतीय समाज में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के नेतागण जहाँ समाज में लोगों को संगठित कर स्वतंत्रता आन्दोलन चला रहे थे । वहीं डॉ. अम्बेडकर समाज के दलित, शोषित एवं कमजोर वर्गों के अधिकारों की लड़ाई लड़ रहे थे क्योंकि तत्कालीन भारतीय समाज में इस वर्ग के लोगों पर अत्याचार, भेदभाव, उत्पीड़न एवं छुआछूत की घटनाएं प्रतिदिन हो रही थी । इन घटनाओं को रोकने में ब्रिटिश अधिकारी ज्यादा ध्यान नहीं देते थे क्योंकि उनका मकसद था कि समाज में यह दोनों वर्ग आपस में लड़ते रहे जिससे इनका ध्यान स्वतंत्रता की तरफ नहीं जायेगा । इस प्रकार अंग्रेज अपनी 'फुट डालो और शासन करों, की नीति का अनुसरण कर शासन करते रहे । कालान्तर में इसका परिणाम यह

हुआ देश के भिन्न–भिन्न जगहों पर जाति, धर्म एवं भाषा आधारित संघर्ष होने लगे । इसी समय ब्रिटिश सरकार ने कम्युनल अवार्ड की घोषणा कर हिन्दू अनुयायियों के मध्य एक लम्बी खाई खींच दी क्योंकि इसके पहले वह मुसलमानों के लिए अलग प्रतिनिधित्व प्रदान कर चुके थे । कम्युनल अवार्ड की घोषणा के पश्चात् गॉधी जी यरवड़ा जेल में आमरण अनशन पर बैठ गये और उन्होंने कहा कि वर्षों पुरानी भारतीय समाज की जातियों को एक दूसरे से अलग किया जा रहा है । इस अवार्ड में उल्लेखित प्रावधानों से गॉधी जी सहमत नहीं थे लेकिन समाज के शोषित एवं दलित वर्गों के लिए इसमें अलग प्रतिनिधित्व का प्रावधान किया गया था । तत्कालीन कॉग्रेस के नेताओं ने डॉ. अम्बेडकर से बात कर एक बार पुनः भारतीय समाज को जातीय आधार पर बॉटने के अग्रेजों की नीति को रोकने का प्रयास किया । इसी समय ''पूना पैक्ट'' महात्मा गॉधी और डॉ. अम्बेडकर के मध्य हुआ तथा इसी समझौते के तहत आरक्षण व्यवस्था शुरू हुई इस प्रकार डॉ. अम्बेडकर की दूरदर्शिता के कारण ही अंग्रेज अपनी नीति में सफल नहीं हुए तथा समाज में सामाजिक समरसता टूटने से बच गयी ।

स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान डॉ. अम्बेडकर ने समाज के दलित वर्गों के कल्याण एवं सशक्तिकरण के कार्य करते हुए इस वर्ग में चेतना जागृत की । साथ ही साथ समय–समय पर डॉ. अम्बेडकर ने ब्रिटिश सरकार के समक्ष इन वर्गों के अधिकारों की वकालत करते हुऐ भारत सरकार अधिनियम, 1935 में आवश्यक प्रावधानों की व्यवस्था कर दी गयी । देश की आजादी की घोषणा के साथ हमारे देश का विभाजन भी अंग्रेजों द्वारा किया गया । देश का विभाजन अंग्रेजों ने धर्म के आधार पर किया और हमारे देश की वर्षों पुरानी सामाजिक सद्भाव की नींव को धर्म के आधार पर हिला दिया । विभाजन के समय देश के कई जगहों पर धर्म आधारित दंगे हुए उनमें सबसे प्रमुख है नोवाखाली का दंगा । इसी समय पश्चिमी पाकिस्तान की सीमा पंजाब पर लाखों लोगों की हत्याए हुई, महिलाओं के साथ बलात्कार तथा सम्पत्ति का नुकसान हुआ । इस प्रकार इस विभाजन की त्रासदी भारतीय इतिहास के पन्नों पर काले अध्याय की तरह है क्योंकि इसमें हिन्दू–मुसलमान की वर्षों पुरानी सांझी–संस्कृति, समरसता, भाई–चारे एवं सहयोग की भावना समाप्त हो गयी । साथ ही साथ दोनों वर्गों में अविश्वास एवं घृणा की भावना का सूत्र–पात हो गया ।

स्वतंत्रता के पश्चात यह सोचा गया कि हमें आपस में लड़ाने वाले चले गये और जो हमारे साथ रहने के लिए तैयार नहीं थे वह चले गये । देश में बचे लोग अब आपस में प्रेम और भाईचारे के साथ मिलजुल कर रहेगें । इसी को ध्यान में रखकर संविधान निर्मात्री सभा के अध्यक्ष के रूप में डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने संविधान में राज्य का कोई धर्म तय नहीं किया और सभी धर्मों के अनुयाइयों को समान अधिकार प्रदान करने सम्बन्धी संवेधानिक प्रावधानों की व्यवस्था की ।

भारतीय संविधान में सामाजिक समरसता से सम्बन्धित प्रावधान

1. अनुच्छेद – 5 नागरिकता का अधिकार
2. अनुच्छेद – 14 विधि के समक्ष समानता
3. अनुच्छेद – 15 धर्म, मूल, वंश, जाति, लिंग अथवा जन्म स्थान के आधार पर भेद का प्रतिबंध ।
4. अनुच्छेद – 16 लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता
5. अनुच्छेद – 17 अस्पृश्यता की समाप्ति
6. अनुच्छेद – 19 वाक् स्वतन्त्रता आदि विषयक कुछ अधिकारों का संरक्षण
7. अनुच्छेद – 21(A) शिक्षा का अधिकार
8. अनुच्छेद – 22 कुछ दशाओं में गिरफ्तारी और निरोध से संरक्षण
9. अनुच्छेद – 25 अन्तःकरण की और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण और प्रचार करने की स्वतन्त्रता (धर्म की स्वतन्त्रता का अधिकार)
10. अनुच्छेद – 26 धार्मिक कार्यों के प्रबन्ध की स्वतंत्रता
11. अनुच्छेद – 27 किसी विशिष्ट धर्म की अभिवृद्धि के करों के संदाय के बारे में स्वतंत्रता
12. अनुच्छेद – 28 कुछ शिक्षण संस्थानों में धार्मिक शिक्षा या धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के बारे में स्वतंत्रता
13. अनुच्छेद – 29 अल्पसंख्यकों के हितों का संरक्षण
14. अनुच्छेद – 30 शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन करने का अल्पसंख्यक वर्गों का अधिकार
15. अनुच्छेद – 38 राज्य लोक कल्याण की अभिवृद्धि के लिए सामाजिक व्यवस्था बनाएगा ।

16. अनुच्छेद – 39 (A) समान न्याय और निःशुल्क विधिक सहायता

17. अनुच्छेद – 51 (A) मूलकर्तव्य

अनुच्छेद – 51 (A) (e) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातत्व की भावना का निर्माण करें जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो ऐसी प्रथाओं का त्याग करें जो स्त्रियों के सम्मान विरूद्ध हैं ।

अनुच्छेद – 51 (A) (f) हमारी सामाजिक संस्कृति की गौरवशाली परम्परा का महत्व समझे और उसका परिक्षण करें ।

18. अनुच्छेद – 325 धर्म, मूलवंश, जाति या लिंग के आधार पर किसी व्यक्ति का निर्वाचक–नामावली में सम्मिलित किए जाने के लिए अपात्र न होना और उसके द्वारा किसी विशेष निर्वाचक–नामावली में सम्मिलित किए जाने का दावा न किया जाना ।

19. अनुच्छेद – 326 लोकसभा और राज्यों की विधान सभाओं के लिए निर्वाचनों का व्यस्क मताधिकार के आधार पर होना ।

हमारे संविधान की प्रस्तावना में भारतीय समाज को एकजुट करने के उद्देश्य से एवं सामाजिक समरसता को स्थापित करने के लिए सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक न्याय के साथ भ्रातृत्व का उल्लेख किया गया है । इससे यह प्रतीत होता है कि संविधान सभा एवं इसके अध्यक्ष डॉ. अम्बेडकर समरसता के प्रति कितने संवेदनशील थे । भारतीय संविधान में पंथ निरपेक्षता का उल्लेख है इसलिए अनुच्छेद–5 में नागरिकता की अर्हता निर्धारित करने में धर्म, भाषा एवं नस्ल को महत्व नहीं दिया गया है । अनुच्छेद–14 विधि के समक्ष समानता, अनुच्छेद–15 में धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग अथवा जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव का प्रतिशोध किया गया है । इस प्रकार उपरोक्त अनुच्छेदों से प्रतीत होता है कि डॉ. अम्बेडकर एक समतावादी, भेदभाव रहित एवं सामाजिक समरसतायुक्त भारतीय समाज को बनाना चाहते थे । अनुच्छेद–17 द्वारा अस्पृश्यता को पूर्णतः समाप्त किया गया । साथ ही अनुच्छेद–19 द्वारा स्वतन्त्रता का अधिकार तथा अनुच्छेद– 25,26,27,28 द्वारा धर्म की स्वतन्त्रता का अधिकार सभी वर्गों एवं सभी धर्मों के अनुयाईयों को प्रदान कर समाज में सामाजिक सद्भाव एवं

भाई–चारा स्थापित किया गया । लेकिन इन प्रावधानों के बावजूद हमारे समाज में दिन–प्रतिदिन धर्म के आधार पर संघर्ष, तनाव एवं दंगे होते रहते हैं जैसे– वर्तमान में असम, जम्मू कश्मीर, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश राज्यों में घटनाऐं घटित हो रही है ।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद–29 एवं 30 संस्कृति और शिक्षा के अधिकार से सम्बन्धित है जिसके अन्तर्गत भारतीय समाज के अल्पसंख्यक वर्गों के हितों को संरक्षित करने के साथ–साथ उनके द्वारा शिक्षण संस्थानों की स्थापना और प्रशासन करने का अधिकार भी इन वर्गों को दिया गया है । इस प्रकार की संवैधानिक व्यवस्था डॉ. अम्बेडकर का भारतीय समाज में समरसता स्थापित करने की प्रतिबद्धता प्रदर्शित करती है ।

भारतीय समाज में सभी वर्गों के कल्याण के लिए राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था करेगा जिसमें सभी को समान न्याय और निःशुल्क विधिक सहायता प्राप्त हो इसकी भी संवैधानिक व्यवस्था डॉ. अम्बेडकर ने अनुच्छेद–38 एवं 39 (ए) में की है । संविधान के मूल कर्तव्य के अन्तर्गत अनुच्छेद–51–ए (एफ) के अन्तर्गत सभी नागरिकों के मूल कर्तव्य में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण का उल्लेख किया गया है तथा 51 के द्वारा सामाजिक संस्कृतिक एवं परम्पराओं के संरक्षण का भी प्रावधान किया गया है । इस प्रकार भारतीय समाज में समरसता एवं भ्रातृत्व को बनाये रखना प्रत्येक नागरिक का मूल कर्तव्य है । इस प्रावधान से यह प्रतीत होता है कि डॉ. अम्बेडकर ने समाज में समरसता स्थापित करने एवं बनाये रखने का उत्तरदायित्व मूल कर्तव्य रूप से सभी नागरिकों पर सौंपा है ।

संविधान के द्वारा समाज के सभी नागरिकों को निर्वाचन में व्यस्क मताधिकार प्रदान किया गया है । (अनुच्छेद–325 एवं 326) जिसमें किसी नागरिक को धर्म, मूलवंश, जाति या लिंग के आधार पर रोका नहीं जा सकता है । इस प्रकार भारतीय संविधान के उपरोक्त सभी प्रावधान प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक समरसता से सम्बन्धित है । भारतीय समाज में चूंकि प्राचीन, मध्यकालीन तथा ब्रिटिश कालीन समय से भेदभाव, उत्पीड़न एवं शोषण व्याप्त था और एक समतामूलक समाज नहीं था । इस समय सबसे अधिक जाति व्यवस्था के कारण समाज में समरसता विखण्डित थी । इन्हीं चिजों को ध्यान में रखते हुए

डॉ. अम्बेडकर ने संविधान में ऐसी व्यवस्था की ताकि कालान्तर से चली आ रही वैमनष्ता को समाप्त किया जाय और एक पंथनिरपेक्ष, समतावादी तथा भ्रातृत्व भावना पर आधारित समाज की स्थापना की जाय ।

डॉ. अम्बेडकर ने संविधान में भ्रातृत्व एवं समरसता सम्बन्धित प्रावधान बनाकर लोगों में सामाजिक समरसता स्थापित करने का अधिकार नागरिकों को दिया । साथ राज्य को समरसता, स्थापित करने की जिम्मेदारी सौंपी तथा देश के नागरिकों को मूल कर्तव्य में समरसता एवं भ्रातृत्व को स्थापित करने का उत्तरदायित्व प्रदन किया । इन संवैधानिक प्रावधानों के अस्तित्व में होने के बाद भी हमारे देश में स्वतन्त्रता के पश्चात भाषा, धर्म, जाति, क्षेत्रीयता पर आधारित तनाव, संघर्ष एवं दंगे हुए हैं । जिनमें 1984 के सिक्ख दंगे, मेरठ के दंगे, बिहार के दंगे, बाबरी मस्जिद के ध्वतीकरण के पश्चात मुम्बई दंगे प्रमुख है ।

भारतीय समाज में हाल के वर्षो में विभिन्न मुद्दों पर आधारित जैसे– मुम्बई में मराठी एवं गैर मराठी, दक्षिण भारत में भाषा आधारित, असम में असमी और गैर असमी तनाव, संघर्ष एवं दंगे हुए हैं । इन घटनाओं में कही न कही राजनैतिक पार्टियां भी प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से सम्मिलित थी । राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरों की सन् 2013 की प्रकाशित रिपोर्ट में देश में घटित सार्वजनिक सुरक्षा से सम्बन्धित अपराध के अन्तर्गत दंगे एवं आगजनी की घटनाऐं निम्नवत् है ।

सार्वजनिक सुरक्षा से सम्बन्धित अपराध (दंगे एवं आगजनी की घटनाऐं)

विवरण	वर्ष				
घटनाएं	2009	2010	2011	2012	2013
	71678	76079	77564	86469	81483

स्रोत एन.सी.आर.बी. रिपोर्ट, 2013

सन् 2013 की प्रकाशित एन.सी.आर.बी. रिपोर्ट के अनुसार सबसे अधिक दंगे बिहार में हुए हैं । इसके बाद दूसरे स्थान पर केरल हैं और इसी प्रदेश में अपराध दर सबसे अधिक (28.6 प्रतिशत) है । इस प्रकार रिपोर्ट के अध्ययन से पता चलता है कि सन् 2009 में जहॉ 71678 दंगे एवं आगजनी की घटनाऐं हुई वहीं 2013 में 81,483 घटनाएं हुई । इससे यह प्रतीत होता है कि समाज में सद्भाव कम हो रहा है चाहे वह धर्म आधारित दंगे हो या अन्य किसी आधार पर ।

वर्तमान समय में हिन्दू–मुस्लिम, हिन्दू–ईसाई एवं आदिवासियों–धर्मान्तरित ईसाईयों के मध्य संघर्ष काफी तीव्र हो गया है । जिसमें हाल के वर्षों में उत्तर प्रदेश के मुजफ्फर नगर एवं उड़ीसा के कंधमाल प्रमुख है । इन घटनाओं ने वर्षों से एक साथ रहने वाले लोगों में अविश्वास पैदा कर दिया है और आपसी प्रेम, सौहार्द एवं भाई–चारे को भी समाप्त कर दिया है ।

भारतीय समाज में धर्म आधारित भेदभाव के साथ–साथ सबसे प्रमुख समस्या जाति व्यवस्था है क्योंकि इस व्यवस्था ने कुछ जातियों को उच्च और कुछ लोगों को समाज में निम्न स्थान प्रदान किया है । इसी व्यवस्था के कारण ही हमारे समाज में भेदभाव, शोषण एवं उत्पीड़न प्रारम्भ हुआ जो समकालीन समाज में व्याप्त है । जाति व्यवस्था को समाप्त करने एवं इससे सम्बन्धित भेदभाव को समाप्त करने के लिए डॉ. अम्बेडकर ने संविधान में प्रावधान कर इस व्यवस्था को समाप्त करने का प्रयास किया ताकि समाज में समरसता स्थापित की जा सके । लेकिन अभी भी हमारे समाज में दलितों के साथ भेदभाव किया जा रहा है जिसका अवलोकन एन.सी.आर.बी. की रिपोर्ट 2013 से कर सकते हैं ।

अनुसूचित जाति के विरूद्ध अपराध की घटनाऐं

अपराध का विवरण	वर्ष 2009	वर्ष 2010	वर्ष 2011	वर्ष 2012	वर्ष 2013
नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955	168	143	67	62	62
अनु.जाति/अनु. जनजाति(उत्पीड़न निवारण) अधिनियम, 1989	11,143	10,513	11,342	12,576	13,975
योग	11,311	10,656	11,409	12,638	14,037

स्रोत एन.सी.आर.बी. रिपोर्ट, 2013

अनुसूचित जाति के लोगों को नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 एवं अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (उत्पीड़न निवारण) अधिनियम 1989 के तहत संरक्षण प्रदान किया गया है । सन् 2009 से 2013 के मध्य अनुसूचित जाति के विरूद्ध अपराध की घटनाएं बढ़ी है केवल सन् 2010 में घटनाऐं कम हुई

है । इन आंकड़ों से यह प्रतीत होता है कि वर्तमान भारतीय समाज में अभी भी इस वर्ग का उत्पीड़न बदस्तूर जारी है । सन् 2013 में कुल 14,037 घटनाएं उक्त दोनों अधिनियमों के अन्तर्गत पंजीकृत की गयी है क्योंकि इन घटनाओं में अनुसूचित जाति से अलग किसी अन्य जाति (उच्च जातियों) के लोगों द्वारा घटनाओं को अंजाम दिया जाता है । इस प्रकार की घटनाओं के घटित होने से यह प्रतीत होता है कि भारतीय समाज में अभी भी समरसता की कमी है और जातीय आधार पर भेदभाव, शोषण एवं उत्पीड़न चल रहा है । अनुसूचित जाति के लोगों के शोषण में कानून अपनी भूमिका निभा रहा है लेकिन प्रभावी क्रियान्वयन एवं न्यायालय द्वारा न्याय में विलम्ब के कारण भी इनका उत्पीड़न हो रहा है । जिससे सामाजिक समरसता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है ।

अनुसूचति जनजाति के लोग हमारे समाज से अलग सूदूर पहाड़ी, दुर्गम एवं वन क्षेत्रों के समीप रहते हैं और इन लोगों के साथ भी अत्याचार, शोषण, उत्पीड़न एवं भेदभाव की घटनाऐं हो रही है ।

अनुसूचित जनजाति के विरूद्ध अपराध की घटनाऐं

अपराध का विवरण	वर्ष 2009	वर्ष 2010	वर्ष 2011	वर्ष 2012	वर्ष 2013
नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955	02	05	07	02	25
अनु.जाति/अनु. जनजाति(उत्पीड़न निवारण) अधिनियम, 1989	944	1,169	1,154	1,311	1,390
योग	946	1,174	1,161	1,313	1,415

स्रोत एन.सी.आर.बी. रिपोर्ट, 2013

एन.सी.आर.बी. रिपोर्ट, 2013 के अनुसार अनुसूचित जनजातियों के लोगों के विरूद्ध 2009 से 2013 तक पंजीकृत घटनाओं के अध्ययन से पता चलता है कि सन् 2009 में 946 घटनाऐं पंजीकृत हुई वहीं 2013 में 1,415 घटनाऐं घटित हुई है । इसमें नागरिक अधिकार संरक्षण, 1955 के तहत पंजीकृत घटनाएं कम है जबकि अनुसूचित जाति के लोगों के द्वारा इसी अधिनियम के तहत दर्ज करवायी गयी है ।

भारतीय समाज में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों के लोगों का अभी भी समाज के अन्य वर्गो (उच्च वर्गों) के मध्य सामाजिक दूरी बनी हुई है । भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में इसी दूरी के कारण ही शोषण, उत्पीड़न एवं हिंसा की घटनाऐं होती है जिससे सामाजिक समरसता स्थापित नहीं हो रही है और इसे संवैधानिक प्रावधानों एवं कानूनों द्वारा स्थापित करने का प्रयास किया जाता है तो यह अस्थायी होती है जो समय–समय पर टूट जाती है । ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में नगरीय क्षेत्रों में विभिन्न वर्गों के मध्य सामाजिक दूरी काफी कम है और इसका उदाहरण विभिन्न अन्तर्जातीय विवाहों, सामूहिक भोज के द्वारा देखा जा सकता है । लेकिन नगरीय क्षेत्रों में लोग धर्म, भाषा एवं खेत्रीयता के आधार पर समरसता को समाप्त करने का प्रयास करते हैं । सामाजिक समरसता के मार्ग में सबसे बड़ी चुनौती साम्प्रदायिकता है और इसमें धर्म एवं महजबों के आधार पर लोग संगठित होकर अन्य लोगों को क्षति पहुॅचाते हैं । साम्प्रदायिकता किसी भी देश के सामाजिक–आर्थिक विकास पर नकारात्मक प्रभाव डालती है । इसके अन्तर्गत दंगे होते हैं जो शहरों में अधिक और गॉवों में कम होते हैं । स्वतंत्रता के पश्चात् साम्प्रदायिक दंगो (हिन्दू–मुस्लिम) में गॉवों का हिस्सा सिर्फ 3.5 प्रतिशत रहा है जबकि शहरी क्षेत्रों का हिस्सा 94.3 प्रतिशत है । वर्तमान भारतीय समाज में सम्प्रदाय आधारित तनाव, संघर्ष एवं हिंसा की घटनाओं में तेजी आयी है जिससे राष्ट्रीय एकता पर खतरा मंड़रा रहा है ।

भारतीय समाज में राजनीति एवं धर्म अलग नहीं हो पा रहे हैं और धर्म का आधार बनाकर राजनैतिक पार्टिया सत्ता हांसिल कर रही है जिससे भी समरसता कमजोर होती जा रही है । विगत कुछ दशकों से अनेकों राज्यों में राजनैतिक पार्टिया जातीय आधार पर लोगों का ध्रुवीकरण कर रही है जिससे समाज में सामाजिक समरसता टूट रही है और आजकल विभिन्न जातियों में जातीय संघर्ष हो रहे हैं । यह जातीय संघर्ष हमारे आर्थिक विकास पर नकारात्मक प्रभाव डालते हैं और राष्ट्रीय एकता को कमजोर करते हैं राजनैतिक पार्टिया इस प्रकार की नीतिया विभिन्न राज्यों विशेषकर उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड में अपना रही है । इससे विभिन्न जातियों एव वर्गों के बीच समरसता कम हुई है और वैमनष्ता बढ़ी है ।

सामाजिक समरसता या सद्भाव को भारतीय समाज में स्थापित करने एवं राष्ट्रीय एकता को बनाये रखने के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा लोगों में मिथक, अन्धविश्वास, अशिक्षा, रूढ़िवादिता, नैतिकता का अभाव, शोषण, उत्पीड़न आदि भी है ।

डॉ. अम्बेडकर एक दूरदर्शी व्यक्ति थे उन्होंने संविधान रचना के पूर्व भारतीय समाज को काफी समीप से देखा था और भेदभाव, शोषण आदि को भोगा भी था इसीलिए उन्होंने बड़ी सावधानीपूर्वक संवैधानिक प्रावधानों को बनाया । जिससे सभी धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्र एवं लिंग के लोग सौहार्द–पूर्वक एक साथ रह सके । इसीलिए संविधान की प्रस्तावना में उन्होंने ऐसी व्यवस्था की थी कि जिससे एक समतामूलक समाज का निर्माण किया जा सके । डॉ. अम्बेडकर ने संविधान में न्याय, समानता के साथ बन्धुत्व पर आधारित समाज की बात है क्योंकि वह जानते थे कि वर्षों से सत्ता, संसाधनों पर काबिज लोगों को संवैधानिक प्रावधानों के लागू होने के पश्चात असहजता महसूस होगी और उनका आक्रोश उन लोगों पर दिखेगा जिनको इन प्रावधानों से लाभ होगा । इसीलिए उन्होंने बन्धुत्व भावना पर जोर दिया था । डॉ. अम्बेडकर का यह कार्य सामाजिक समरसता के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण योगदान है ।

भारतीय संवधिान में डॉ. अम्बेउकर ने सामाजिक समरसता स्थापित करने सम्बन्धी प्रावधान नागरिकता के अधिकार से प्रारम्भ कर निर्वाचन में भाग लेने तक किया है । साथ ही साथ सभी नागरिकों को मूलभूत अधिकार प्रदान किया गया है जिसमें समानता, स्वतन्त्रता, धर्म की स्वतन्त्रता एवं संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकारों के द्वारा समाज में समरसता बनाये रखने के लिए प्रत्येक नागरिक को मूलभूत अधिकार दिया गया जिसे किसी अन्य धर्म, मजहब, जाति, भाषा एवं लिंग के लोगों द्वारा अतिक्रमित नहीं किया जा सकता है । यह डॉ. अम्बेडकर का सामाजिक समरसता में अमूल्य योगदान है ।

भारतीय समाज में सामाजिक समरसता को स्थापित करने या बनाये रखने का उत्तरदायित्व एवं अधिकार केवल नागरिकों पर ही नहीं है बल्कि डॉ. अम्बेडकर ने राज्य के नीति–निर्देशक तत्वों के प्रावधानों के अन्तर्गत इसकी जिम्मेदारी राज्य पर भी सौंपी है । ताकि किसी भी नागरिक के साथ भेदभाव न हो सकें ।

डॉ. अम्बेडकर ने अपनी पुस्तक 'थाट्स ऑन लिंगविस्टिक स्टेट्स' में भारत में भाषा आधारित राज्यों के गठन के पक्षधर नहीं थे । उनका मानना था कि भाषा पर बनने वाले राज्य अपनी भाषा को ही कार्य व्यवहार की भाषा बनायेगें जिससे राष्ट्रीय स्तर पर कठिनाईयां उत्पन्न होगी और इससे समरसता के साथ राष्ट्रीय एकता पर भी प्रभाव पड़ेगा । इसीलिए इसके वह प्रारम्भ में पक्षधर नहीं थे लेकिन बाद में उन्होंने इसका यह कहते हुए समर्थन किया कि भाषा पर आधारित राज्यों का गठन हो लेकिन राष्ट्र भाषा एवं कार्य व्यवहार की भाषा हिन्दी और अंग्रेजी ही रहेगी । इस प्रकार डॉ. अम्बेडकर ने लोगों की भावनाओं का ध्यान रखते हुए राष्ट्रीय एकता को भी संरक्षित किया ।

सामाजिक समरसता के लिए नागरिकों का शिक्षित एवं जागरूक होना आवश्यक है । साथ ही लोगों में नवींन ज्ञान, तकनीकी एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण होना चाहिए । जिससे समाज में व्याप्त मिथक, अन्धविश्वास, अज्ञानता, रूढ़िवादिता, पूर्वाग्रहता समाप्त होगी । इसी बात को ध्यान में रखते हुए डॉ. अम्बेडकर ने शिक्षित बनने पर जोर दिया और लोगों में शिक्षा के प्रसार के लिए एक दर्जन शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना की और साप्ताहिक पत्र मूकनायक, बृहिष्कृत भारत, जनता एवं समता का संचालन कर लोगों में अज्ञानता दूर करने का कार्य किया और जागरूकता को बढ़ाने का प्रयास किया ।

डॉ. अम्बेडकर औद्योगीकरण एवं नगरीकरण के पक्षधर ये उनका मानना था कि औद्योगिकरण से नगरीकरण की प्रक्रिया तीव्र होगी और नगरीय क्षेत्रों में लोगों में जातीय आधार पर भेदभाव कम होगा । जिससे लोगों में सामाजिक समरसता बढेगी और सामाजिक दूरिया कम होगी । वर्तमान समय में नगरीकरण की प्रक्रिया तेजी से हो रही है । इसका प्रभाव देश के विकास पर सकारात्मक पड़ता है । इसीलिए डॉ. अम्बेडकर सामाजिक समरसता के लिए औद्योगीकरण एवं नगरीकरण मानते थे ।

समकालीन भारत में सामाजिक समरसता को लेकर विभिन्न प्रकार के मत एवं विचार है लेकिन डॉ. अम्बेडकर ने जो संवैधानिक प्रावधान और विचार प्रस्तुत किए उन्हीं को अपनाकर समतामूलक, पंथनिरपेक्ष, न्यायपूर्ण, भ्रातृत्व एवं समरसतायुक्त

भारत का निर्माण कर सकते हैं । इसीलिए डॉ. अम्बेडकर का सामाजिक समरसता स्थापित करने तथा लोगों में भ्रातृत्व बनाये रखते हुए राष्ट्रीय एकता को मजबूत करने में अमूल्य योगदान है ।

❐

सन्दर्भ –

1. *रामगोपाल सिंह, समाजशास्त्र : समाजशास्त्र परिचय एवं भारत में समाज, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 2005*
2. *एस एण्ड मुनीर, जे.जे. सरकार, भारत का संविधान, आलिया लॉ एजेन्सी, इलाहबाद*
3. *जी.आर. मदनलाल, परिवर्तन एवं विकास का समाजशास्त्र, विवेक प्रकाशन, नईदिल्ली*
4. *एन.एन. ओझा, क्रानिकल, क्रानिकल पब्लिकेशन प्रा.लि. नोएडा, दिसम्बर, 2014*
5. *संगीता पाण्डे एवं तेजस्कर, भारत में सामाजिक समस्याए, टाटा मैकग्रा हिल पब्लिकेशन्स नईदिल्ली 2009*
6. *एन.सी.आर.बी. रिपोर्ट, 2013*
7. *डब्ल्यू. डब्ल्यू. डब्ल्यू. अम्बेडकर ओआरजी*

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
वर्ष 22, अंक 85–86, अप्रेल–सितम्बर, 2016 पृ. 84–92 **ISSN 0974 -1100**

कृषकों के आर्थिक उन्नयन में जैविक कृषि का योगदान इंदौर जिले के संदर्भ में

डॉ0 सादिक मोहम्मद खान

भारत आज भी एक कृषि प्रधान देश है। भारतीय जीवन और अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्वपूर्ण स्थान है। इससे लगभग 50 प्रतिशत राष्ट्रीय आय होती है और देश के लगभग 75 प्रतिशत लोग इससे निर्वाह करते हैं। प्रथम महायुद्ध तक राष्ट्रीय आय में कृषि का हिस्सा 65 प्रतिशत तक था किंतु बाद में इसमें क्रमशः कमी होती गई क्योंकि देश औद्योगिकीकरण की दिशा में बढ़ता गया। कृषि के अतिरिक्त अन्य तीन क्षैत्रों (खनिज निर्मित उद्योग परिवहन संचार एवं व्यापार उद्योग तथा अन्य सेवाओं के क्षैत्रों) से सम्मिलित रूप में शेष 47 प्रतिशत राष्ट्रीय आय प्राप्त हुई। कृषि और इससे संबंधित व्यवसाय देश की लगभग 75 प्रतिशत जनता के जीविकोपार्जन का आधार है। कृषि में कुल कार्यशील जनसंख्या लगभग 69.7 प्रतिशत भाग लगा हुआ है। कृषि क्षैत्र से न केवल देशवासियों को वरन् लगभग 35 करोड़ पशुओं को आवश्यक भोजन प्राप्त होता है। कृषि जनसंख्या के लिए खाद्यान्न पूर्ति का आधार है। इनके अतिरिक्त कृषि से कपास, पटसन, कपड़ा और चीनी, जैसे प्रमुख उद्योगों के लिए कच्चा माल मिलता है और भी ऐसे अनेक उद्योग हैं जो कृषि पर अप्रत्यक्ष रूप से निर्भर हैं।

कृषि का निर्यात अथवा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षैत्र में भारी महत्व है, देश से निर्यात की जाने वाली अधिकांश वस्तुएँ कृषि से ही प्राप्त होती है। कृषि वस्तु के निर्यात से देश को प्राप्त होने वाली कुल आय का एक बहुत बड़ा भाग प्राप्त

होता है। कृषि क्षैत्र से निर्यात की जाने वाली वस्तुओं में चाय, तिलहन, तम्बाकू, कपास, कहवा, मसाले, सुपारी, गौर, काजू, फल, खली आदि मुख्य हैं।

अकेले चाय के निर्यात से ही देश को प्रति वर्ष लगभग 150 करोड़ रूपये से भी अधिक मूल्य की विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है।

कृषि देश के अनेक छोटे–बड़े उद्योग आन्तरिक व्यापार और परिवहन का आधार है। अनेक महत्वपूर्ण उद्योगों को कच्चा माल मुख्यतः कृषि से ही मिलता है।

देश के लोगों के बजट का आधे से अधिक भाग खाद्यान्न तथा अन्य कृषि पदार्थों पर व्यय होता है अतः खाद्यान्न और अन्य कृषि पदार्थों का देश के आन्तरिक व्यापार में बहुत बड़ा भाग ठहरता है। कृषि उत्पादन को इधर–उधर लाने ले जाने के फलस्वरूप परिवहन साधनों के विकास को प्रोत्साहन मिलता है, इस प्रकार कृषि औद्योगिक विकास की रीढ़ है। आर्थिक विकास के लिये साधन जुटाने की दृष्टि से कृषि के विकास को प्राथमिकता देना भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल हैं। कृषि क्षैत्र से बचत न बढ़ने की सूरत में हमारे आर्थिक विकास की गति तीव्र नहीं हो सकती।

भारत में लोह–इस्पात, सीमेन्ट व कागज आदि–आदि उद्योगों को छोड़कर शेष बड़े उद्योग कच्चे माल की उपलब्धि के लिए कृषि पर निर्भर हैं। अर्थात् देश के वृहद् स्तरीय उद्योगों के विकास में कृषि का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

कृषि उद्योग पर न केवल देश की लगभग 75 प्रतिशत जनता प्रत्यक्ष रोजगार का भी सर्वाधिक प्रमुख साधन है। और एक विशाल जनसंख्या कृषि पदार्थों के व्यवसाय में संलग्न है। कृषि श्रमिकों की निर्धनता और बेरोजगारी को मिटाने की दृष्टि से कृषि क्षैत्र का विशेष महत्व है। कृषि अथवा खेतिहर मजदूरों की संख्या औद्योगिक श्रमिकों से लगभग 10 गुना है। भारतीय अर्थव्यवस्था में खेतिहर मजदूरों की गरीबी दूर करने के लिए कृषि का विकास ही रामबाण औषधि है।

देश की भूमि का अधिकांश भाग कृषि कार्यों के काम में लाया जाता है। देश के 32.88 करोड़ हेक्टेयर भौगोलिक क्षैत्र में 30.41 करोड़ हेक्टेयर अर्थात् 92.5 प्रतिशत भूमि के बारे में आँकड़े उपलब्ध हैं। इसमें से लगभग 16.70 करोड़ हेक्टेयर क्षैत्रफल में फसल बोई जाती है।

कृषि आयकर को व्यापक रूप से लगाने पर भारी मात्रा में राजस्व प्राप्ति सम्भव है। कृषि सरकारी आय का बड़ा स्त्रोत ही नहीं वरन् सरकारी आय का काफी बड़ा भाग भी कृषि क्षैत्र से संबंधित बातों पर खर्च होता है। कराधान ऋण एवं व्यय नीतियों का निर्धारण मुख्यतः कृषि उत्पादन मात्रा के आधार पर किया जाता है।

भारतीय कृषि को मानसून का जुआ कहा जाता है क्योंकि मानसून के अच्छे रहने पर कृषि उत्पादन पर्याप्त मात्रा में होता है। और सरकार को विभिन्न करों से अच्छी आय प्राप्त होती है, जिससे बजट सन्तुलन कायम रहता है, किंतु मानसून असफल रहने पर सम्पूर्ण सरकारी बजट छिन्न–भिन्न हो जाता है। जिससे देश की अर्थव्यवस्था पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

कृषि कई बातों से देश को अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा दिलाने में अग्रणी है, मूँगफली ओर चाय के उत्पादन में भारत का स्थान विश्व में प्रथम है। चावल के उत्पादन में दूसरा ओर तम्बाकू तथा प्राकृतिक रबड़ के संबंध में इसका स्थान क्रमशः तीसरा और पाँचवा है। कृषि तथा अन्य उद्योग परस्पर पूरक उद्योग कहलाते हैं क्योंकि एक उद्योग का विकास दूसरे उद्योग के विकास में सहायक होता है।

उपभोक्ता व्यय पर नियुक्त राष्ट्रीय समिति की रिपोर्ट के अनुसार देश के उपभोक्ता की आय का लगभग 70 से 80 प्रतिशत भाग कृषि वस्तुओं के क्रय पर व्यय होता है। चूँकि खाद्यान्नों की मांग की आय अधिक होती है अतः खाद्यान्नों के मूल्यों में उतार–चढ़ाव का प्रभाव उपभोक्ता के जीवन–स्तर को प्रभावित करता है।

भारतीय अर्थव्यवस्था में देश के आर्थिक विकास में कृषि विकास का अत्यधिक महत्व है। एक दार्शनिक के शब्दों में, ''भारत के लोगों की समृद्धि की तुलना एक उस वृक्ष से की जा सकती है, जिसकी जड़ कृषि है, शाखाएँ एवं पत्तियाँ क्रमशः वस्तु निर्माण तथा व्यापार है। यदि इसकी जड़ की क्षति पहुँचती है तो उसकी शाखाएँ टूट जाती है। पत्तियाँ गिर जाती है एवं वृक्ष सूख जाता है।''

जैविक कृषि का महत्व –

रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग आधुनिकी कृषि का परिचायक है। इनका अत्यधिक उपयोग मृदा के उपजाऊपन को कम करता है तथा भूमि क्षरण को बढ़ाता है। पौधे को मुख्यतः तीन पोषक तत्वों नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटेशियम की विशेष आवश्यकता होती है।

मृदा परीक्षण तथा पौधों की आवश्यकतानुसार सूक्ष्म पोषक तत्व भी दिए जाते हैं। इन तत्वों की पूर्ति हेतु फसलों को यूरिया, फास्फेट्स, पोटाश आदि उर्वरक दिए जाते हैं। यदि वे उर्वरक आवश्यकता अनुरूप सन्तुलित मात्रा में दिए जाए तो लाभ प्राप्त होता है, अन्यथा लगातार अधिक मात्रा में इनके प्रयोग से मिट्टी की प्राकृतिक उर्वरकों के उपयोग से फसलों का एकांगी विकास होता है तथा पौधे बीमारी के शिकार हो जाते हैं। भारत के संदर्भ में इन उर्वरकों का अध्ययन किया जाए तो ज्ञान होगा कि भारतीय अर्थव्यवस्था की जीवन रेखा, कृषि उर्वरकों के कारण आज मृत्यु रेखा में परिवर्तित होती जा रही है। दिन–दूनी रात–चौगुनी जनसंख्या वृद्धि के कारण खाद्यान्नों, दलहनों, तिलहनों, सब्जी, फल–फूल, चारा आदि की पूर्ति के लिए रासायनिक उर्वरकों एवं कृषि रसायनों का प्रयोग कृषकों की मजबूरी बनता जा रहा है। यह मजबूरी कृषि योग्य मृदा को सिर्फ बदतर ही नहीं बना रही बल्कि वह सभी प्रकार के कृषि उत्पादों, वायु, जल एवं पर्यावरण को भी प्रदूषित कर रही है। आज मानव में जटिल से जटिल बीमारियाँ इन्हीं खाद्यान्नों तथा दूध के सेवन से हो रही है।

कीटनाशकों के दुष्परिणाम – फसलों, सब्जियों, फूलों तथा फलों में लगने वाले कीट बीमारियों से रक्षा के लिए रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग कृषि में किया जाता है। इसके गंभीर दुष्परिणाम होते हैं। कीटनाशक रसायनों के अंतर्गत विभिन्न प्रकार के कीटनाशक सम्मिलित है, जैसे–फफूंदी नाशक, खरपतवार नाशक, सूक्ष्म कीटनाशक, कृषिनाशक श्रमक, रोड़ेफ्टिसाईड्स इत्यादि।

हरित क्रांति के ये अद्‌भुत उर्वरक व कीटनाशक धीरे–धीरे जन हानि का कारण बनते जा रहे हैं। अब कीटनाशक आत्महत्या के सुलभ साधन बजते जा रहे हैं। पंजाब–उत्तरप्रदेश व राजस्थान में ऐसे कई प्रकरण सामने आए हैं। कई

युवक–युवतियाँ कीटनाशक (सल्फास, एल्यूमिनियम फास्फाईड) का दुरूपयोग अपने जीवन का अन्त करने में कर रहे हैं। स्पाइडर, लेटीर बर्ड बीटल, ड्रेगन फ्लाई आदि फसलों के मित्र जीव अपना जीवन चक्र फसलों को हानि पहुँचाने वाले जीवों को खाकर पूरा करते हैं। फलों में कीटनाशकों के छिड़काव से यह भी मर जाते हैं। कुछ समय पूर्व आन्ध्रप्रदेश के वारंगल जिले में कपास की कृषि में प्रयोग होने वाले कीटनाशक मुख्यतः एंडोसल्फान के कारण 500 कृषक मर गए तथा 1000 से अधिक गंभीर रूप से अस्वस्थ हो गए। वहाँ के निवासियों में कैंसर, मिर्गी, मानसिक पिछड़ापन तथा स्नायविक विकारों का सर्वाधिक प्रतिशत पाया गया। कौंसिल ऑफ एग्रीकल्चरल रिसर्च के जर्नल इंडियन फार्मिंग के एक अंक में प्रकाशित एक सर्वेक्षण के अनुसार हिमाचल प्रदेश में 1000 टन सेब पैदा करने के लिए लगभग एक टन कवकनाशी का प्रयोग किया जाता है। ये सब सीधे बाजार में आते हैं– यद्यपि इन पर कीटनाशकों का प्रभाव बना रहता है। बैंगलोर के पास के कुछ क्षैत्रों में बैंगन, मिर्च, गोभी, आलू, टमाटर, पत्ता गोभी, खीरा व शिमला मिर्च के एकत्रित नमूनों के परीक्षण से ज्ञात हुआ कि उनमें 315 पर कीटनाशक अवशिष्ट थे, जिनमें से 115 पर अधिकतक अवशिष्ट पाए गए जो स्वास्थ्य के लिए गंभीर खतरा है। अतः विकल्प के तौर पर जैविक कृषि आवश्यक है।

शोध प्रविधि –

प्रस्तुत शोध पत्र में इंदौर जिले की चार तहसीलों इंदौर, साँवेर, देपालपुर, महू को शोध का आधार बनाया गया तथा प्रत्येक तहसील में 5 ग्रामों को अध्ययन हेतु चुना गया तथा प्रत्येक ग्राम में से 5 कृषक परिवारों को जो जैविक कृषि में संलग्न है, चुना गया। इस प्रकार 100 कृषक परिवारों में प्राथमिक आँकड़े संकलित किये गये। साक्षात्कार अनुसूची तथा समूह चर्चा का उपयोग किया गया। द्वितीयक आँकड़ों हेतु पुस्तके, मैगजीन, सांख्यिकीय पुस्तिका आदि का प्रयोग किया गया।

जैविक कृषि से आर्थिक विकास –

प्रस्तुत शोध अध्ययन में आर्थिक विकास के अध्ययन हेतु जोत का आकार, सिंचाई के साधन, उपयोगी साधन, जैविक खाद एवं दवाई निर्माण , जैविक रकबा, जैविक उत्पाद मूल्य, आर्थिक स्थिति आदि को मुख्य रूप से लिया गया है।

जैविक कृषि भूमि रकबा

कुल भूमि जैविक कृषि भूमि रकबा (एकड़ में)	आवृत्ति	प्रतिशत
1 – 2	20	20
2 – 4	60	60
4 – 6	10	10
6 – 8	10	10
योग	100	100

चुने गये कृषकों में 20 प्रतिशत कृषक अपनी कुल भूमि में जैविक कृषि करते है। 60 प्रतिशत 2 से 4 एकड़ भूमि में जैविक कृषि करते हैं तथा 10 एवं 10 प्रतिशत क्रमशः 4 से 6 एवं 6–8 एकड़ भूमि में जैविक कृषि करते हैं।

जैविक खाद तथा जैविक रसायन बनाने हेतु उपलब्ध सामग्री

विकल्प	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	70	70
नहीं	30	30
योग	100	100

उपरोक्त तालिका के अनुसार 70 प्रतिशत कृषको के पास जैविक उत्पाद बनाने की कच्ची सामग्री उपलब्ध है। जबकि 30 प्रतिशत कृषक अन्य कृषकों या सीधे बाजार से जैविक खाद या जैविक रसायन खरीदते हैं।

जैविक कृषि तथा रासायनिक कृषि में प्रति हैक्टेयर उत्पादन लागत में अंतर

विकल्प	आवृत्ति	प्रतिशत
3 से 5 हजार	50	50
5 से 8 हजार	20	20
8 से 10 हजार	20	20
10 हजार से ज्यादा	10	10
योग	100	100

उपरोक्त तालिका के अनुसार 50 प्रतिशत कृषकों का मानना है कि जैविक कृषि तथा रासायनिक कृषि में प्रति एकड़ उसे 5 हजार रूपये तक अंतर आता है, 20 प्रतिशत कृषकों का मानना है कि 5 से 8 हजार रूपये का अंतर आता है जबकि 30 प्रतिशत कृषकों के अनुसार 8–10 हजार एवं 10 हजार रूपये से अधिक अंतर जैविक तथा रासायनिक कृषि में प्रति हैक्टेयर आता है।

जैविक कृषि से उत्पादित फसलों एवं सब्जियों का बाजार मूल्य

विकल्प	आवृत्ति	प्रतिशत
उच्च	80	80
मध्यम	15	15
निम्न	05	05
अतिनिम्न	0	0
योग	100	100

80 कृषकों के अनुसार जैविक फसलों का बाजार में उच्च मूल्य मिलता है। 15 प्रतिशत कृषक मध्यम मूल्य मानते हैं तथा 05 प्रतिशत निम्न मानते हैं, जिसका कारण बाजार से संपर्क में नहीं होना बताते हैं।

जैविक कृषि से आर्थिक स्थिति में परिवर्तन

विकल्प	आवृत्ति	प्रतिशत
पूर्ण परिवर्तन	80	80
आंशिक परिवर्तन	10	10
कुछ भी परिवर्तन नहीं	10	10
योग	100	100

उपरोक्त तालिका के अनुसार 80 प्रतिशत कृषक जैविक कृषि को अपनी आर्थिक स्थिति मजबूत होने का कारण मानते हैं, जबकि 10 प्रतिशत का मानना है कि आंशिक परिवर्तन हुआ है, जो 10 प्रतिशत यह माने हैं कि हमारी आर्थिक स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। वास्तव में उन्हें जैविक कृषि की सही जानकारी नहीं मिल पाई है।

निष्कर्ष –

शोध क्षेत्र में कृषि कार्य में संलग्न कृ ाकों के पास पर्याप्त मात्रा में आधुनिक कृषि यंत्र उपलब्ध हैं, जिससे समय एवं श्रम की बचत होती है।

औसत रूप से क्षेत्र का लगभग 80 प्रतिशत कृषक वर्ग रासायनिक खाद एवं दवाईयों का उपयोग करता है।

शोध क्षेत्र में कृषक आधुनिक कृषि के कारण कर्ज में डुबता जा रहा है अतः जैविक कृषि अनिवार्य है।

शोध में एक विचारणीय बिन्दु सामने आया वह यह कि 20 ग्राम में से 15 ग्राम में कैंसर पीड़ित की संख्या 50 थी जो कि आने वाले समय के लिए खतरा पैदा कर सकता है। जैविक कृषि द्वारा उत्पादित फसलों से यह बिमारियाँ बहुत हद तक कम की जा सकती है।

आधुनिक यंत्रों द्वारा वनों की कटाई भारी मात्रा में की गई, जिसके कारण वन संपदा का ह्रास हुआ है।

कृषि आधुनिकीकरण से पर्यावरण प्रदूषण बढ़ा है। वायुमण्डल में रासायनिक तत्वों का प्रभाव बढ़ा है। पर्यावरण प्रदूषण की रोकथाम हेतु जैविक कृषि का महत्वपूर्ण योगदान है।

अनेक पक्षियों की प्रजातियाँ तथा वे कीट जो किसान मित्र कहे जाते हैं।

क्षेत्र के 80 प्रतिशत कृषक उत्पादन बढ़ोतरी से तो खुश हैं किंतु मृदा की निरंतर घटती उत्पादन क्षमता से चिन्तित भी है।

सुझाव –

कृषि क्षेत्र में जैविक कृषि को बढ़ावा देने की आवश्यकता है। जिससे आर्थिक बचत के साथ–साथ पर्यावरणीय समस्याओं से छुटकारा पाया जा कता है।

शोध क्षेत्र में कृषि अनुसंधान करने की पर्याप्त आवश्यकता है।

भंडारण क्षमता, कोल्ड स्टोरेज, विपणन साख समितियाँ आदि को बढ़ाने हेतु कार्य–योजना तैयार करनी चाहिए।

वर्तमान समय में सबसे बडी चुनौती है कि कृषकों को रासायनिक खादों तथा दवाईयों के अंधाधुंध प्रयोग से रोका जाए।

शासन को चाहिए कि कीटनाशकों की दुकानों की जाँच कर नकली माल बेचने से रोका जाए।

जैविक प्रशिक्षण कार्यक्रम हर ग्राम में चलाया जाए।

❐

सन्दर्भ –

1. *नरेन्द्र मोहन अवस्थी, ''संसाधन और पर्यावरण'' (2005), म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, पेज नं. 1, 19*
2. *जैनेन्द्र गुप्ता, 'भारत का भूगोल'' (2008), युनिवर्सिटी पब्लिकेशन्स, जयपुर, पेज नं. 75,84*
3. *माजिद हुसैन, ''कृषि भूगोल'' (2005), रावत पब्लिकेशन, जयपुर, पेज नं. 30, 32*
4. *हरीश कुमार खत्री, (2013) : ''भारत का भूगोल'', कैलाश पुस्तक सदन भोपाल,पेज नं. 54, 57, 112, 117*
5. *प्रमीला कुमार, ''कृषि भूगोल'' (2005), म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, पेज नं. 42–44*

ओम प्रकाश, ''मृदा संरक्षण के सिद्धांत'' (2001), राम पब्लिशिंग हाऊस, मेरठ, पृ. नं. 1–5

जिला सांख्यिकीय पुस्तिका, जिला इंदौर (वर्ष 2011, 2015)

www.indianformer.com

www.census2011.com

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
वर्ष 22, अंक 85–86, अप्रेल–सितम्बर, 2016 पृ. 93–101 ***ISSN 0974 -1100***

उज्जैन सम्भाग की चयनित औद्योगिक इकाईयों में मानव संसाधन प्रबन्ध

डॉ0 मनीषा जैन

प्रत्येक व्यावसायिक प्रतिष्ठान का उद्देश्य होता है कि वह अपने मालिकों को उचित दर से पूँजी पर वापसी प्रदान करे, व्यवसाय में पूर्ण विनियोग करें, अपने उपभोक्ता तथा कर्मचारियों को संतुष्ट रखे, साथ ही समाज तथा देश में अपनी ख्याति को बनाये रखे। इस दिशा में एक कुशल प्रबन्धक की मुख्य भूमिका होती है कि वह व्यवसाय के उपलब्ध भौतिक संसाधनों, तकनीक, वित्त आदि के साथ–साथ मानव संसाधन का सफल एवं प्रभावशाली उपयोग करें। प्रस्तुत अध्ययन उज्जैन सम्भाग में मानव संसाधन प्रबन्ध, मानव प्रबन्ध को ध्यान में रखकर किया गया हैं। मानव ही सम्पूर्ण आर्थिक क्रियाओं का मूलाधार हैं। मानव एक सक्रिय एवं जटिल घटक है। अतः इसका प्रबंधन करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य हैं। बदलते वैश्विक परिद श्य में इसकी जटिलताएँ ओर भी बढ़ गई हैं। आर्थिक सुधार के क्रम में आर्थिक उदारीकरण, निजीकरण तथा भूमण्डलीकरण के प्रभाव ने मानव संसाधनों तथा मानव संसाधन प्रबंध व प्रबंधकों के समक्ष कई चुनौतियॉ खड़ी की हैं। बढ़ती व बदलती व्यावसायिक पद्धतियाँ, तकनीकी सूचना क्रांति ने वैश्विक स्तर पर व्यावसायिक वातावरण को काफी प्रभावित किया हैं। ऐसे में संगठनों के समक्ष उत्पन्न चुनौतियॉ, गलाघोंट वैश्विक प्रतियोगिता तथा व्यावसायिक जगत में आये परिवर्तनों से संगठन को बाहर निकालने तथा उसके अस्तित्व को बचाये व बनाये रखने के लिए प्रभावशाली तथा युद्ध नीतिक मानव संसाधन प्रबन्ध की परम् आवश्यकता हैं। इस शोध अध्ययन द्धारा औद्योगिक

इकाईयों में मानव संसाधन का अध्ययन किया जा सकेगा जिससे औद्योगिक इकाईयों द्वारा मानव संसाधन की वर्तमान स्थिति एवं भविष्य में संभावनाएँ तलाशने का कार्य किया जा सकेगा। इसका उद्देश्य उज्जैन सम्भाग की औद्योगिक इकाईयों में मानव संसाधन की वास्तविक स्थिति का पता लगाना हैं। इस शोध कार्य के लिये न्यायदर्श विधि का प्रयोग किया गया हैं।

अध्ययन की इकाई– प्रस्तुत अध्ययन उज्जैन सम्भाग की चयनित औद्योगिक इकाईयों के विशेष संदर्भ में है जिसके अन्तर्गत हमने ग्रेसिम इन्डस्ट्रीज लिमिटेड नागदा, इप्का लेबोरेटरियस लिमिटेड रतलाम, रामको इन्डस्ट्रीज लिमिटेड मक्सी एवं जय हिन्द इन्डस्ट्रीज लिमिटेड देवास को शामिल किया गया हैं।

निदर्शन का चुनाव– प्रस्तुत अध्ययन हेतु सर्वप्रथम जिला उद्योग केन्द्र से संगठित उद्योगों की जानकारी प्राप्त की गई। इन उद्योगों में से न्यादर्श रीति के आधार पर औद्योगिक इकाईयों का चयन किया गया। संबंधित कम्पनी से 168 श्रमिकों एवं कर्मचारियों को प्रश्नावली हेतु याद्विच्छिक रुप से जिला चयन किया गया ताकि सम्पूर्ण सम्भाग का अध्ययन हेतु प्रतिनिधित्व हो सके। अतः अध्ययन में औद्योगिक इकाईयों से संबंधित विस्तृत एवं सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करने के लिए 168 श्रमिकों एवं कर्मचारियों से समंक लेकर कर्मचारियों का मूल्यांकन परक अध्ययन प्रस्तुत किया गया।

उपकरण– अनुसूची, प्रश्नावली, साक्षात्कार, निर्देशिका आदि उपकरण को शामिल किया और समंक संकलन में प्राथमिक एवं द्वितीयक समंकों को शामिल किया गया हैं।

अध्ययन का उद्देश्य–

1. उज्जैन सम्भाग में मानव संसाधन को क्रियाशील बनाने की आवश्यकता हैं।
2. उज्जैन सम्भाग में मानव संसाधन में मानव संसाधन को कुशल बनाने की आवश्यकता हैं।
3. उज्जैन सम्भाग में मालिकों एवं मानव संसाधन के मध्य बढ़ती हुई खाई को मिटाने की आवश्यकता हैं।

4. उज्जैन सम्भाग में मानव संसाधन प्रबन्ध की दशा में ठोस कदम उठाने की आवश्यकता हैं।

5. उज्जैन सम्भाग में मानव संसाधन को उसका उचित पारिश्रमिक एवं अन्य हितलाभ दिलाने की आवश्यकता हैं।

परिकल्पनाएँ–

1 उज्जैन सम्भाग में कई औद्योगिक इकाईयों में मानव संसाधन का समुचित प्रबंध नहीं होने के कारण वे बन्द या बीमार हो गई हैं।

2 उज्जैन सम्भाग में कई औद्योगिक इकाईयों में मानव संसाधन प्रबंध का कियान्वयन पूर्णतः वैधानिक प्रावधानों के अधीन नहीं किया गया हैं।

3 उज्जैन सम्भाग में औघोगिक मानव संसाधन अधिक गतिशील एवं कियाशील नही हैं।

4 उज्जैन सम्भाग में उघोगपतियों एवं औघोगिक मानव संसाधन में उचित समन्वय का अभाव हैं।

चयनित औद्योगिक इकाईयों में मानव संसाधन

ग्रेसिम इन्डस्ट्रीज लिमिटेड, नागदा में वर्ष 2015–16 में 3800 कर्मचारी कार्यरत है जिसमें कुशल कर्मचारी 800, अर्द्धकुशल कर्मचारी 1600 और अकुशल कर्मचारी 1400 हैं। कम्पनी में कर्मचारियों की भर्ती योग्यता एवं साक्षात्कार के माध्यम से वर्ष 2015–16 में 292 की गई हैं। इसके अतिरिक्त लगभग 10 प्रतिशत श्रमिकों एवं कर्मचारियों की नियुक्ति सिफारीश, परिचय एवं राजनीतिक दबाव के कारण की गई हैं। कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने के लिये मूल वेतन के अतिरिक्त मंहगाई भत्ता, बोनस, यातायात भत्ता, यात्रा भत्ता, शिक्षा सुविधा एवं क्लव की सुविधा दी जाती हैं। कर्मचारी के सेवानिवृत होने पर ग्रेच्युटी, पेंशन एवं प्रॉविडेण्ड फण्ड से प्राप्त राशि का भुगतान किया जाता हैं।

जय हिन्द इन्डस्ट्रीज लिमिटेड, देवास में वर्ष 2015–16 में 2100 कर्मचारी कार्यरत है जिसमें कुशल कर्मचारी 550, अर्द्धकुशल कर्मचारी 700 और अकुशल कर्मचारी 850 हैं। कम्पनी में कर्मचारियों की भर्ती प्रारंभिक साक्षात्कार एवं समूह साक्षात्कार के माध्यम से वर्ष 2015–16 में 72 की गई हैं। कर्मचारियों को

अभिप्रेरित करने के लिये मूल वेतन के अतिरिक्त मंहगाई भत्ता, बोनस, यातायात भत्ता, शिक्षा सुविधा, मकान की सुविधा एवं क्लव की सुविधा दी जाती हैं। कर्मचारी के सेवानिवृत होने पर ग्रेच्युटी, पेंशन एवं प्रॉविडेण्ड फण्ड से प्राप्त राशि का भुगतान किया जाता हैं।

रामको इन्डस्ट्रीज लिमिटेड, मक्सी में वर्ष 2015–16 में 1500 कर्मचारी कार्यरत है जिसमें कुशल कर्मचारी 375, अर्द्धकुशल कर्मचारी 620 और अकुशल कर्मचारी 505 हैं। कम्पनी में कर्मचारियों की भर्ती लिखित परीक्षा एवं साक्षात्कार के माध्यम से वर्ष 2015–16 में 52 की गई हैं। इसके अतिरिक्त लगभग 18 प्रतिशत श्रमिकों एवं कर्मचारियों की नियुक्ति सिफारीश, परिचय एवं राजनीतिक दबाव के कारण की गई हैं। कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने के लिये मूल वेतन के अतिरिक्त मंहगाई भत्ता, यातायात भत्ता, चिकित्सा सुविधा, केन्टीन की सुविधा एवं क्लव की सुविधा दी जाती हैं। कर्मचारी के सेवानिवृत होने पर ग्रेच्युटी, पेंशन एवं प्रॉविडेण्ड फण्ड से प्राप्त राशि का भुगतान किया जाता हैं।

इप्का लेबोरेटरियस लिमिटेड, रतलाम में वर्ष 2015–16 में 2500 कर्मचारी कार्यरत है जिसमें कुशल कर्मचारी 520, अर्द्धकुशल कर्मचारी 780 और अकुशल कर्मचारी 1200 हैं। कम्पनी में कर्मचारियों की भर्ती लिखित परीक्षा एवं साक्षात्कार के माध्यम से वर्ष 2015–16 में 76 की गई हैं। इसके अतिरिक्त लगभग 12 प्रतिशत श्रमिकों एवं कर्मचारियों की नियुक्ति सिफारीश, परिचय एवं राजनीतिक दबाव के कारण की गई हैं। कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने के लिये मूल वेतन के अतिरिक्त मंहगाई भत्ता, बोनस, यातायात भत्ता, शिक्षा भत्ता, मकान किराया भत्ता एवं चिकित्सा सुविधा दी जाती हैं। कर्मचारी के सेवानिव त होने पर ग्रेच्युटी, पेंशन एवं प्रॉविडेण्ड फण्ड से प्राप्त राशि का भुगतान किया जाता हैं। नित औघौगिक इकाईयों में मानव संसाधन प्रबंध में प्रयुक्त विधि के अंतर्गत औघोगिक विवाद अधिनियम 1947, श्रम संघ अधिनियम 1926, कारखाना अधिनियम 1948 एवं कर्मचारी नियोजन अधिनियम बताया गया हैं

चयनित औद्योगिक इकाईयों में मानव प्रबंध एवं प्रयुक्त विधि

1 औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947– उज्जैन सम्भाग की चयनित इकाईयों में कर्मचारियों द्वारा मूल वेतन, बोनस, सेवानिवृति अवधि बढ़ाए जाने एवं जबरी छुट्टी को लेकर आए–दिन विवाद होते रहते हैं।

2 श्रम संघ अधिनियम, 1926– उज्जैन सम्भाग की चयनित औद्योगिक इकाईयों में अखिल भारतीय श्रम संघ कांग्रेस, भारतीय मजदूर संघ, हिन्दू मजदूर सभा, सेंटर ऑफ इंडियन ट्रेड यूनियन, भारतीय राष्ट्रीय श्रम संघ कांग्रेस एवं यूनाइटेड ट्रेड यूनियन कांग्रेस कार्यरत हैं।

3 कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम– उज्जैन सम्भाग की चयनित औद्योगिक इकाईयों में कर्मचारियों एवं श्रमिकों का कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के अन्तर्गत निम्नलिखित हितलाभ दिए जाते है– (अ) चिकित्सा हितलाभ (ब) आश्रितजन हितलाभ (स) मातृत्व हितलाभ (द) अपंगता हितलाभ

4 कर्मचारी नियोजन अधिनियम, 1946 – उज्जैन सम्भाग की चयनित औघोगिक इकाईयों में निम्नलिखित सेवा की शर्तें निर्धारित की गई है जो इस प्रकार है–

1 वेतन, इसमें वेतन की अवधि तथा भुगतान का ढंग सम्मिलित हैं।
2 किसी भी प्रचलित कानून के अधीन नियोक्ता द्वारा दिया गया अंशदान अथवा देय अंशदान जिसका उद्देश्य श्रमिक को लाभान्वित करना हो।
3 कम्पेन्सेट्री भत्ता अथवा अन्य भत्ते।
4 काम के घण्टे तथा विश्राम के लिये मध्यान्तर।
5 सवेतन छुट्टी तथा छुट्टियाँ।
6 स्थायी आदेशों के अतिरिक्त अन्यथा पाली का आरम्भ, परिवर्तन अथवा उसका स्थगन।
7 कोटियों का वर्गीकरण।
8 रीतिगत छूट की वापसी अथवा किसी रिवाज में परिवर्तन।
9 अनुशासन के नये नियमों का लागू करना वर्तमान नियमों में परिवर्तन।
10 उत्पादन में ऐसी पद्धतियों का आरम्भ करना जिससे कि छॅटनी की सम्भावना हो।
11 श्रमिकों की संख्या में कमी अथवा वृद्धि आकस्मिक को छोड़कर।

उज्जैन सम्भाग की औद्योगिक इकाईयों में मानव संसाधन में आने वाली समस्याएँ

इस प्रकार उज्जैन सम्भाग की चयनित औद्योगिक इकाईयों में मानव संसाधन के समक्ष कई प्रकार की समस्याएँ है जिन्हें हम निम्न प्रकार व्यक्त कर सकते हैं–

1 लक्ष्य वेधन– लक्ष्य वेधन एक सबसे बड़ी समस्या हैं। व्यवसाय में शीर्ष प्रबंधकों या उद्यमी का मुख्य कार्य सही दिशा का निर्धारण करना है और उसे संगठन के अन्तिम व्यक्ति तक पहुॅचाना मानव संसाधन प्रबंधकों का कार्य हैं। मानव संसाधन की सबसे बडी समस्या समस्त मानव शक्ति को लक्ष्य या उस दृष्टिकोण से जोड़ने की है जो उच्च प्रबंधक चाहता हैं।

2 आन्तरिक वातावरण– एक स्वस्थ आन्तरिक वातावरण का निर्माण करना ताकि बाह्य वातावरण और बाह्य समस्याओं का सामना किया जा सके। इस दृष्टिकोण से मानव संसाधन को कार्य संतुष्टि प्रदान करना, एक सुदृढ़ परम्परा विकसित करना, कार्य संस्कृति में बदलाव लाना, आपसी समन्वय व टीम भावना विकसित करना मानव संसाधन प्रबंधकों के सामने बड़ी समस्या हैं।

3 औघोगिक संबंध में परिवर्तन– औघोगिक संबंध की अवधारणा परिवर्तनशील है और यह वातावरण के प्रभाव के साथ बदलता रहता हैं। आज औघोगिक संबंध के समक्ष कई समस्याएँ हैं। मॉसपेशी शक्ति की जगह दिमागी शक्ति ने औघोगिक संबंध की दिशा एवं प्रव ति में व्यापक परिवर्तन लाये हैं। अतः मानव संसाधन प्रबंधकों के सामने बड़ी समस्या है कि उद्योगों के भीतर स्थायी औद्योगिक शान्ति की स्थापना करे।

4 संगठनात्मक क्षमता का विकास– मानव संसाधन प्रबंधकों का कार्य सिर्फ श्रमिकों की कार्यकुशलता, उनके ज्ञान में वृद्धि, प्रशिक्षण व विकास दिलाने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि उन्हें ऐसी संगठनात्मक शक्ति का विकास करना है ताकि मानव संसाधन मनोवैज्ञानिक रुप से समस्त व लगातार कार्य बदलाव व परिवर्तन का सामना करने के लिए तैयार रहे।

5 कार्य परिकल्पना तथा संगठनात्मक संरचना– आज वैश्विक परिवर्तन ने कार्य

परिकल्पना तथा संगठनात्मक संरचना की दिशा में कई समस्याएँ उत्पन्न की हैं। वैश्विक मानदण्ड ने भारतीय उद्योगों को कार्य परिकल्पना तथा संगठनात्मक संरचना के लिए बाध्य किया हैं। तकनीकी परिवर्तन की जटिलता को समझना मानव संसाधन के लिए चुनौतीपूर्ण कार्य हैं। अतः आज उद्योगों में गुणात्मक प्रबंध दृष्टिकोण विकसित करने की आवश्यकता बन रही हैं। इससे कार्य परिकल्पना तथा संगठनात्मक ढ़ांचे में व्यापक परिवर्तन करना पड़ रहा है जो स्वतः कई समस्याएँ खड़ी कर देता हैं।

6 मनोवैज्ञानिक सामाजिक पद्धति में बदलाव– आधुनिक तकनीकी प्रणाली ने मानव को एक मशीन में बदलने की पहल कर दी है और तकनीकी के साथ व्यक्ति इस तरह जुड़ रहा है दोनों में विभेद करना मुश्किल होता चला जा रहा हैं। इस प्रवृति ने मानव संसाधन के समक्ष कई समस्याएँ खड़ी कर दी हैं। एक तरफ जबकि मानव संसाधन प्रबंध ने व्यावहारिक विज्ञान पर बल दिया है वही बदलती तकनीकी ने मानवीय पक्ष की उपेक्षा की हैं।

7 श्रम शक्ति की आकृति में बदलाव– संगठन में श्रम शक्ति की आकृति में व्यापक बदलाव आ रहे हैं। कहीं तकनीकी परिवर्तन ने श्रम शक्ति की आकृति को कम कर दिया है, तो कहीं आकृति में वृद्धि भी हुई हैं। श्रम शक्ति की आकृति के साथ–साथ श्रम शक्ति की संरचना आदि में भी व्यापक परिवर्तन आये हैं। आज संगठन में कुशल श्रमिक, तकनीकी श्रमिक, प्रबंधकीय व्यक्ति आदि का समावेश अधिक हुआ हैं। बदलते परिवेश ने ऐसा करने के लिए बाध्य भी किया हैं। इस प्रकार के श्रम शक्ति के व्यवहार को समझना और उनको लक्ष्य की ओर उन्मुख करना बड़ी समस्या हैं।

8 उच्च स्तरीय आवश्याताओं की संतुष्टि– आज के श्रमिक अपनी उच्च स्तरीय जरुरतों की पूर्ति के लिए जागरुक हुए हैं। मेस्लों की जरुरत आधारित उत्प्रेरणा श्रेणीबद्ध पद्धति ने स्थापित किया है कि जैसे–जैसे व्यक्ति की जरुरतें पूर्ति होती जाती है उनकी उत्प्रेरणा बढ़ती जाती हैं। अतः उच्च स्तरीय आवश्याताओं की संतुष्टि प्रत्येक श्रमिक की मुख्य मॉगे बनती चली जा रही हैं।

9 सामाजिक पद्धति का समानीकरण– आज सामाजिक पद्धति का समानीकरण की परम आवश्यकता हैं। यह सत्य है कि संगठन में रेखीय प्रबंध के कई लाभ है,

किन्तु संगठन में श्रेणीबद्ध पद्धति ने कई कठिनाईयों को भी जन्म दिया हैं। आज सभी संगठन समस्त मानव संसाधन को एक परिवार के रुप में स्थापित करने का प्रयास कर रहे हैं। सभी स्तर के पदाधिकारी एवं कर्मचारी को सामाजिक भावना से जोड़कर मैत्रीवत प्रबंध की भावना उत्पन्न करना एक प्रबल समस्या हैं।

10 तकनीकी विकास– एक तरफ तकनीकी परिवर्तन ने कई नए रोजगार के अवसर विकसित किए है जबकि कई पुराने कार्य को समाप्त कर दिया हैं। आज मानव संसाधन प्रबंध की सबसे बड़ी समस्या हैं। संगठन में तकनीकी प्रयोग ने मानव संसाधन की आक ति को कम किया है, जिससे कई रोजगार के अवसर बंद हो गए और संगठन में अतिरिक्त श्रम शक्ति को शिक्षण, प्रशिक्षण देकर उनकी योग्यता एवं ज्ञान परिवर्तित कर उनको दूसरे कार्यो में लगाना बहुत बड़ी समस्या हैं।

निष्कर्ष–

उज्जैन सम्भाग की औद्योगिक इकाईयों में मानव प्रबन्ध का समुचित प्रबन्ध न होने के कारण के. एस. नजरअली लिमिटेड उज्जैन, सिन्थेटिक लिमिटेड देवास, हीरा मिल्स कम्पनी लिमिटेड उज्जैन, इन्दौर टेक्सटाइल्स कम्पनी लिमिटेड उज्जैन एवं ग्रेसिम इन्डस्ट्रीज लिमिटेड नागदा का भारत कॉमस प्लांट सदा के लिसे बन्द हो गये।

उज्जैन सम्भाग की औद्योगिक इकाईयों में कर्मचारियों को बोनस, ग्रेच्युटी एवं चिकित्सा सुविधाओं को पूर्णतः राशि का भुगतान नहीं किया गया हैं।

उज्जैन सम्भाग की औद्योगिक इकाईयों में मानव संसाधन क्रियाशील एवं गतिशील नहीं है क्योंकि अकुशल कर्मचारी बदली, स्थानांतरण के कारण कम्पनी छोड़कर दूसरी कम्पनी में चले जाते हैं।

उज्जैन सम्भाग की औद्योगिक इकाईयों में कर्मचारियों और प्रबन्धकों के मध्य समन्वय के अभाव के कारण हड़ताल, तालाबंदी होती रहती हैं।

सुझाव–

1 संगठन के स्पष्ट एवं सुपरिभाषित लक्ष्य का निर्धारण किया जाना चाहिए, जिसमें सभी महत्वपूर्ण तथ्यों, कार्य की दशाएँ, मानवीय संबंधों का समावेश किया जाना चाहिए।

2 उच्च प्रबंधकों का लगातार सहयोग प्राप्त करने का प्रयास किया जाना चाहिए।

3 मानव संसाधन प्रबंधकों को विभिन्न क्षेत्र के प्रबंधकों–व्यावसायिक, अनुसंधान प्रबंधक, उत्पादन प्रबंधक, विपणन प्रबंधक आदि की भागीदारी प्राप्त करनी चाहिए।

4 प्रभावी संगठन की स्थापना करनी चाहिए जहाँ सभी स्तर पर लोगों का सहयोग प्राप्त किया जा सके और उनको उत्तरदायित्व सौंपा जा सके।

5 प्रभावी सूचना पद्धति विकसित किया जाना चाहिए और इसके लिए नवीन सूचना पद्धति का प्रयोग किया जाना चाहिए।

6 समन्वय एवं एकीकरण विकसित कर मानव संसाधन के सफल प्रयोग की संभावना विकसित करने का प्रयास किया जाना चाहिए।

7 योजना के नियमित मूल्यांकन की पद्धति विकसित की जानी चाहिए।

8 एक स्वस्थ्य आन्तरिक वातावरण का निर्माण करना चाहिए ताकि बाह्य वातावरण और बाह्य समस्याओं का निराकरण किया जा सके।

9 मानव संसाधन नीतियों में परिवर्तन के फलस्वरुप होने वाले सम्भावित श्रमिक असंतोष पर समुचित प्रकाश डालना और असंतोष कम करने की दृष्टि से उपाय किये जाने चाहिए।

10 श्रम कानून आर्थिक नीतियों से जुड़े होने चाहिए तभी मानव संसाधन प्रबंध की नीतियों को प्रभावी बनाया जा सकता है।

❐

सन्दर्भ –

1. *चतुर्भुज मामोरिया एवं सतीश मामोरिया "सेविवर्ग प्रबन्ध एवं औद्योगिक संबन्ध",साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा।*

2 *एन.पी. आर्य "सामाजिक सर्वेक्षण की पद्धति" साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा।*

3 *Employee recruitment current knowledge and important areas for future research, September 2008, Jams A, Breugh.*

4 *The role of positive illusions in employment relationships, September 2016, Jonathan, E.biggane, David G. Allen, Lumines S. Albert.*

5 *Human resource management: too busy tooking up to see where it is going longer term, June 2015, mick Marchington.*

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
वर्ष 22, अंक 85–86, अप्रेल–सितम्बर, 2016 पृ. 102–110 **ISSN 0974 -1100**

इन्दौर नगर में महिला बाल–श्रमिकों का मानव भूगोल

धर्मेन्द्र सिंह चौहान

महिला बाल–श्रम का इतिहास शायद इतना ही पुराना है जितना कि मानव इतिहास। बहुत से विकासशील तथा नये औद्योगिक विकासोन्मुख देशों में महिला बाल–श्रम प्रथा एक अभिशाप है। महिला बाल–श्रम प्रथा अल्पविकसित देशों के स्वरूप को धूमिल करती है, क्योंकि विकासशील देशों में महिला बाल–श्रम अत्यंत दयनीय अवस्था में है। वास्तव में महिला बाल–श्रम प्रायः सभी विकसित देशों में भी प्रचलित है।

भारत में महिला बाल–श्रम समस्या अत्यंत जटिल है। आज महिला बाल–श्रम एक सामाजिक बुराई के रूप में समाज में व्याप्त है। महिला बाल–श्रम प्रथा बालिकाओं के शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक विकास में तो बाधक है ही, साथ ही भावी पीढ़ी के भविष्य को भी अन्धकारमय बना रहा है।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि भारत के इतिहास में प्राचीन काल में भी महिला बाल–श्रम प्रथा विद्यमान थी। बालिकाओं को भी वस्तुओं की भाँति खरीदा और बेचा जाता था। आइने अकबरी में ऐसे बहुत से उदाहरण मिलते हैं जिससे स्पष्ट उल्लेख है कि गरीब बालिकाओं को धनी परिवारों में कार्य करने पड़ते थे। उन दिनों बालिकाओं को गुलामों के रूप में देखा जाता था।

भारत में निर्धनता, अधिक जनसंख्या, कुपोषण, बेरोजगारी एवं अशिक्षा की समस्याऐं हैं। फलस्वरूप बचपन की स्वाभाविक एवं मौलिक प्रवृत्ति से दूर रहकर

बचपन का विनाश करते हुए एक महिला बाल–श्रमिक व्यस्क होते–होते गंभीर बीमारियों की जकड़ में आ जाती है। शारीरिक अक्षमता के कारण वह अपने परिवार व समाज के लिये भारस्वरूप हो जाती है। वास्तव में महिला बाल–श्रम एक समस्या ही नहीं वरन् एक रोग के रूप में समाज में खुलेआम चुनौती दे रहा है। इन परिस्थितियों में अधखिली कली जैसी बालिका खिलने से पहले ही मुरझाने को मजबूर है। खतरनाक उद्योगों एवं व्यवसायों में महिला बाल–श्रमिकों को कार्य करने के लिए बाध्य किये जाने से महिला बाल–श्रमिकों को अपना स्वास्थ्य और कोमल भावनाओं की बलि चढ़ानी पड़ती है। लाखों छोटी–छोटी महिला बाल–श्रमिकों को काम पर भेजकर उनका बचपन छीना जाता है। जिन महिला बाल–श्रमिकों को स्कूल में होना चाहिए था, वे बहुत कम वेतन पर और अस्वास्थ्यकर दशाओं में विभिन्न कार्यों में लगी है।

वास्तव में आज बाल महिला बाल–श्रम की जड़ें इतनी गहराई तक जा पहुँची हैं, कि इनको उखाड़ना अत्यंत कठिन होता जा रहा है। बाल–श्रम उन्नमूलन हेतु विभिन्न प्रयास हो रहे हैं। वर्ष 1990 को बालिका वर्ष के रूप में मनाया गया। इसका उद्देश्य विश्व के सभी बच्चों के कल्याण के लिए कार्य करना रखा गया। संयुक्त राष्ट्र संघ ने बाल अधिकार घोषणा पत्र भी लागू किया था, जिसमें कहा गया कि मानव जाति पर बच्चों का यह ऋण है कि वे उन्हें अपनी श्रेष्ठतम विरासत सुलभ करें और अपने इस कर्तव्य पालन के लिए सभी दायित्वों की पूर्ति हेतु वचनबद्ध हो। परंतु सच्चाई यह है कि बाल–कल्याण की घोषणाऐं सिर्फ कागजों पर ही होती है। हम महिला बाल–श्रमिकों के कल्याण, सुधार, शिक्षा, विकास और अधिकारों के लिए बड़ी–बड़ी बातें तो करते हैं, परंतु उनके क्रियान्वयन के प्रति गंभीर नहीं होते हैं।

दुर्भाग्य से आजादी के 68 साल बाद भी यह सपना तार–तार है। आज भारत में इस चेतना की कमी है एवं हम देखते हैं कि महिला बाल–श्रमिक किस प्रकार गंदे कपड़े पहनकर होटल व घरों में बर्तन साफ करने व चाय–कॉफी बनाने का कार्य करती है, तथा जटिल खतरनाक उद्योग में अपने माता–पिता के साथ हाथ बटाती है, और पालक भी यही चाहते हैं कि उनकी रोजी–रोटी में वे मदद करें। इस प्रकार महिला बाल–श्रमिकों को स्कूल, खेलने का मैदान एवं उत्तम भोजन से दूर रखा जाता है।

प्रयुक्त अवधारणाऐं : महिला बाल–श्रमिक :– कोई भी ऐसी महिला जिसने अपनी आयु का चौदहवां वर्ष पूरा नहीं किया है वह 'बालिका' हैं तथा कोई भी बालिका जो ऐसे कार्य में लगी है, जो मनोरंजन और पढ़ाई लिखाई करने के अवसरों में बाधा डालता है 'महिला बाल–श्रमिक' कहलाती है।

ऐसी कोई भी बालिका जिनकी उम्र 14 वर्ष से कम है उन्हें किसी भी प्रकार के निर्माण कार्य में नियोजित नहीं किया जाये। इस प्रकार महिला बाल–श्रमिक वह बालिका है, जिसने अपनी आयु का चौदहवां वर्ष पूरा नहीं किया है और वेतन लेकर या बिना वेतन के काम कर रही है।

ऑपरेशन रिसर्च ग्रुप, बड़ौदा के अनुसार – एक महिला बाल–श्रम वह बालिका है जिसको सर्वेक्षण के आधार पर चुना जाता है, जो 5–15 वर्ष की आयु वर्ग में आती है। साथ ही जो वेतन लेकर या बिना वेतन के लाभ के लिए परिवार के साथ या परिवार से अलग पूरे दिन कार्य करती है, महिला बाल–श्रमिक कहलाती है।

शोध के उद्देश्य – प्रस्तुत शोध में जिन उद्देश्यों का निर्धारण किया गया है, वे निम्नलिखित हैं –

- महिला बाल–श्रमिकों का अध्ययन करना।
- महिला बाल–श्रमिकों की पारिवारिक संरचना का अध्ययन करना।
- महिला बाल–श्रमिकों के रहन–सहन का अध्ययन करना।
- महिला बाल–श्रमिकों की पारिवारिक आय का अध्ययन करना।

उपकल्पनाऐं – प्रस्तुत शोध से जुड़ी उपकल्पनाओं का वर्णन निम्नवत् है :–

- महिला बाल–श्रमिक की पारिवारिक स्थिति निम्न स्तर की है।
- महिला बाल–श्रमिक अशिक्षित परिवार से संबंधित है।
- महिला बाल–श्रमिक पिछड़ी जाति से आती है।
- महिला बाल–श्रमिक कार्य अनिच्छापूर्वक करती है।

शोध प्रारूप :– प्रस्तुत अध्ययन उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद नगर के विभिन्न कार्यों में संलग्न महिला बाल–श्रमिकों पर आधारित है। तथ्यों के संकलन हेतु 50 महिला बाल–श्रमिक उत्तरदाताओं को सोद्देश्यपूर्ण निदर्शन के आधार पर चयनित किया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन में महिला बाल–श्रमिकों की सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि एवं कार्य की दशाओं का वर्णन किया गया है। महिला बाल–श्रमिकों से तथ्यों का संकलन साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में महिला बाल–श्रमिकों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति से संबंधित निम्नलिखित तथ्य प्राप्त हुए हैं :–

आयु :– व्यक्ति की स्थिति निर्धारण में आयु का विशिष्ट महत्व है। वर्तमान में जहाँ अर्जित गुणों को प्राथमिकता दी जाती है, वहाँ महिला बाल–श्रमिकों को उचित विकास तथा निर्धनता को दूर करने के लिये शैक्षिक महत्व के साथ आयु का विशेष महत्व है। इसी संबंध में 'बाल–श्रमिकों' की आयु को तालिका में निम्न रूप में दर्शाया गया है –

तालिका संख्या – 01

महिला बाल–श्रमिकों का आयु विवरण

आयु वर्ग	संख्या	प्रतिशत
8–10	16	32
10–12	26	52
12–14	08	16
कुल योग	50	100

उपर्युक्त तालिका को देखने से स्पष्ट होता है कि सर्वाधिक 52 प्रतिशत महिला बाल–श्रमिक 10–12 वर्ष की आयु के अंतर्गत आती है। लगभग एक तिहाई 32 प्रतिशत महिला बाल–श्रमिक 8–10 वर्ष आयु वर्ग में आती है और 16 प्रतिशत महिला बाल–श्रमिक 12–14 वर्ष की आयु वर्ग के अंतर्गत आती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि महिला बाल–श्रमिक शिक्षा प्राप्त करने की आयु में विभिन्न कार्यों में लग जाती है।

जाति :– भारतीय समाज मुख्य रूप से एक जाति प्रधान समाज रहा है। यहाँ सामाजिक स्तरीकरण का प्रमुख आधार जाति प्रथा ही है। चयनित महिला बाल–श्रमिकों से जाति के संबंध में निम्न आंकड़े प्राप्त हुए हैं।

तालिका संख्या – 02

महिला बाल–श्रमिकों का जाति विवरण

जाति	संख्या	प्रतिशत
सामान्य	09	18
पिछड़ी	36	78
अनुसूचित	02	04
कुल योग	50	100

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि 78 प्रतिशत महिला बाल–श्रमिक पिछड़ी जाति के अंतर्गत पाई गई तथा शेष 18 प्रतिशत महिला बाल–श्रमिक सामान्य जाति के अंतर्गत पाई गई। मात्र 4 प्रतिशत महिला बाल–श्रमिक अनुसूचित जाति के अंतर्गत आती है। इससे निष्कर्ष प्राप्त होता है कि पिछड़े वर्ग का स्तर नीचे गिरा हुआ है।

तालिका संख्या : 03

महिला बाल–श्रमिकों को पारिश्रमिक का भुगतान

पारिश्रमिक	संख्या	प्रतिशत
दैनिक	07	14
साप्ताहिक	20	40
मासिक	23	46
कुल योग	50	100

उपरोक्त सारिणी से स्पष्ट होता है 46 प्रतिशत पारिश्रमिक भुगतान साप्ताहिक पाया गया तथा उससे कम 40 प्रतिशत मासिक पाया गया। सबसे कम 14 प्रतिशत दैनिक पाया गया।

कार्य की प्रकृति – महिला बाल–श्रमिकों को कार्य पर रखने से अस्थायी रूप से परिवार को लाभ तो होता है, परंतु परेशान और नाखुश बचपन अपने भावी विकास और वृद्धि के लिए मजबूत आधार प्रस्तुत नहीं कर पाता। प्रस्तुत शोध में महिला बाल–श्रमिकों की कार्य के प्रति रूचि संबंधित विवरण को निम्न तालिका द्वारा दर्शाया गया है।

तालिका संख्या – 04

महिला बाल–श्रमिकों की कार्य की प्रकृति

कार्य के प्रति रूचि	संख्या	प्रतिशत
इच्छापूर्वक	16	32
अनिच्छापूर्वक	34	68
कुल योग	50	100

उपर्युक्त तालिका से ज्ञात होता है कि अधिकांश महिला बाल–श्रमिक लगभग 68 प्रतिशत कार्य अनिच्छापूर्वक करती हुई पायी गयी। लगभग एक तिहाई 32 प्रतिशत महिला बाल–श्रमिक कार्य इच्छापूर्वक करती हुई पायी गयी। यह इस तथ्य की ओर इंगित करता है कि महिला बाल–श्रमिकों को कार्य करने के लिए विवश किया जाता है।

आय :– आय पारिवारिक भरण–पोषण का साधन है। पारिवारिक आय स्त्रोत का परिवार के विकास से सीधा संबंध है। परिवार के सदस्यों की आमदनी ही परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन होती है। प्रस्तुत शोध में महिला बाल–श्रमिकों के आय संबंधी विवरण को निम्न तालिका द्वारा दर्शाया गया है।

तालिका संख्या – 05

महिला बाल–श्रमिकों की आय

आय वर्ग	संख्या	प्रतिशत
100–200	27	54
200–300	23	46
300 से अधिक	00	00
कुल योग	50	100

उपर्युक्त तालिका से ज्ञात होता है कि सबसे अधिक 54 प्रतिशत महिला बाल–श्रमिकों की दैनिक आय 100–200 आय वर्ग के अंतर्गत पाई गई तथा 46 प्रतिशत 200–300 आय वर्ग के अंतर्गत पाई गई। 300–400 आय वर्ग के अंतर्गत संख्या शून्य पाई गई। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सर्वाधिक महिला

बाल–श्रमिकों की दैनिक आय मात्र 100–200 आय वर्ग के अंतर्गत आती है, जो कि बहुत कम है।

पारिवारिक संरचना :– परिवार पति–पत्नी तथा उनकी संतानों से मिलकर बनता है। परिवार समाज की सबसे छोटी इकाई है। प्रस्तुत शोध में पारिवारिक संरचना का विवरण तालिका में निम्न रूप में दर्शाया गया है।

तालिका – 06

महिला बाल–श्रमिकों के परिवार की संरचना

सदस्य	संख्या	प्रतिशत
2–5	04	08
5–8	23	46
8–12	23	46
कुल योग	50	100

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि 5–8 तथा 8–12 आय वर्ग दोनों में संख्या 46 प्रतिशत पाई वर्ग गई तथा 2–5 आयु वर्ग में 08 प्रतिशत संख्या पाई गई। 5–8 व 8–12 सदस्य संख्या का उच्च प्रतिशत यह दर्शाता है कि महिला बाल–श्रमिकों के परिवार में सदस्यों की संख्या अधिक है। उनके परिवारों में सदस्यों की प्रति परिवार औसत संख्या 7.64 सदस्य है, जो अधिक कही जा सकती है।

आर्थिक स्तर :– महिला बाल–श्रमिकों की पारिवारिक आय का मुख्य स्त्रोत पिता का वेतन ही है। इसी को आधार मानकर इनके सामाजिक स्तर का निर्धारण आर्थिक स्तर के आधार पर किया जाता है। प्रस्तुत शोध में आर्थिक स्तर संबंधित विवरण तालिका में निम्न रूप में दर्शाया गया है –

तालिका संख्या – 07

महिला बाल–श्रमिकों का आर्थिक स्तर

जीवन स्तर	संख्या	प्रतिशत
निम्न स्तर	43	46
मध्यम स्तर	07	14
उच्च स्तर	00	00
कुल योग	50	100

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि महिला बाल–श्रमिक 86 प्रतिशत निम्न स्तर से संबंधित पाई गई और शेष 14 प्रतिशत महिला बाल–श्रमिक मध्यम स्तर से संबंधित पाई गई, उच्च स्तर के अंतर्गत प्रतिशत शून्य रहा। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि सर्वाधिक महिला बाल–श्रमिक निम्न आर्थिक स्तर से आती है।

शिक्षा :– शिक्षा का तात्पर्य अंधकार से प्रकाश की ओर तथा अज्ञानता से ज्ञान प्राप्त करने की ओर बढ़ने का प्रयास है। शिक्षा के अभाव में व्यक्ति परिवार और समाज और अज्ञानता के अंधेरे में भटकता रहता है। प्रस्तुत शोध में महिला बाल–श्रमिकों की पारिवारिक शिक्षा संबंधी विवरण निम्न तालिका द्वारा दर्शाया गया है।

तालिका संख्या – 08

महिला बाल–श्रमिकों के परिवार में शिक्षा का स्वरूप

शैक्षिक योग्यता	संख्या	प्रतिशत
शिक्षित	00	00
साक्षर	20	40
अशिक्षित	30	60
कुल योग	50	100

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि 60 प्रतिशत महिला बाल–श्रमिक अशिक्षित परिवार से संबंधित पाई गई तथा मात्र 40 प्रतिशत साक्षर परिवार से संबंधित पाई गई। शिक्षित परिवार से कोई महिला बाल–श्रमिक नहीं आती है अर्थात् अशिक्षा भी महिला बाल–श्रम को बढ़ाने के लिये उत्तरदायी है।

निष्कर्ष :– उपर्युक्त सारणियों से प्राप्त विश्लेषण के आधार पर हम कह सकते हैं कि महिला बाल–श्रमिक गरीबी, अशिक्षा और अधिक जनसंख्या के कारण बन जाती है। गरीबी एवं अशिक्षा के साथ ही महिला बाल–श्रम प्रथा के लिए तरह–तरह के अंधविश्वास एवं सामाजिक कुरीतियाँ भी जिम्मेदार है। महिला बाल–श्रमिक नाम मात्र की मजदूरी पर विभिन्न असहनीय दशाओं में कार्य करती

है। वे अनुशासन में रहकर कार्य करती है, उन्हें आसानी से डरा–धमकाकर अधिक घंटों तक कार्यरत रखा जा सकता है। वे अपने शोषण का कोई प्रतिरोध नहीं कर पाती है । प्राकृतिक परिवेश के विपरीत क्रियाकलापों के कारण व्यस्क महिला श्रमिक बनते वह शारीरिक एवं मानसिक रूप से अक्षम होकर एक कुशल मजदूरी के लिए अनुपयुक्त हो जाती है।

अंत में यही कहा जा सकता है कि महिला बाल–श्रमिकों को शोषण से बचाने के लिए उनके माता–पिता को जागरूक करने की आवश्यकता के साथ ही सरकार की जो नीतियाँ व कार्यक्रम हैं, उनको उन महिला बाल–श्रमिकों तक पहुंचाना आवश्यक है। स्कूली शिक्षा, स्वास्थ्य व अधिकार संबंधी जानकारी उनकों समय–समय पर देना चाहिए। उनको स्कूल में प्रवेश कराने में सहायता करना व चिकित्सीय सुविधाएँ सुलभ कराना चाहिए। महिला बाल–श्रम प्रथा को रोकने के लिए सबसे पहले हमें अपने पड़ोस व मोहल्ले से शुरूआत करनी होगी। अपनी क्षमता के अनुसार उनकी सहायता करनी होगी। सबको स्वयं आगे आकर इस कुप्रथा के प्रति एकजुट होना होगा, तभी इस कुप्रथा का अंत हो सकता है।

❐

सन्दर्भ –

1. *सैयद अली, नवाज जैदी : ''चाइल्ड लेबर'' ए केन्सर ऑफ इण्डियन सोसयटी, मानक पब्लिकेशन, दिल्ली 2006, पृ. 141.*

2 *पन्त : ''इकोनोमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया अंडर, द मुगल'', 1990, पृ.64*

3 *भारत का संविधान अनुच्छेद 24*

4 *आहुजा, दमन एण्ड जैन महावीरः ''एकॉनॉमिक ऑफ चाइल्ड लेबर–ए मिथ'' कुरूक्षेत्र, मई वोल्युम 46 (8) 1998 पृ. 4*

पूर्वदेवा

मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी की सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

'पूर्वदेवा' के प्रकाशन का उद्देश्य मुख्यतः भारतीय समाज व्यवस्था में व्याप्त मानवीय विषमताओं के उन्मुलन, दलितों में मानवीय-अस्मिताबोध एवं अधिकार-चेतना उत्पन्न करने और तद्जनित सामाजिक परिवर्तन की भूमिका तैयार कर मानवीय मूल्यों की स्थापना के निमित्त ऐतिहासिक एवं सामाजिक आधार पर विविधपक्षीय, तथ्यपूर्ण एवं शोधपरक अध्ययन एवं चिंतन को प्रवर्त्त करना है। जिससे कि दलित, सर्वहारा वर्ग का सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षणिक आदि क्षेत्रों में समुचित विकास एवं मानवीय सम्मान का मार्ग प्रशस्त किया जा सके और देश में राष्ट्रीय एकरूपता, सामाजिक न्याय एवं सहिष्णुता की भावना वास्तविक आकार ग्रहण कर सके।

अतएव, इस हेतु विद्वान लेखकों, अनुसंधानकर्ताओं से मौलिक लेख, शोध आलेख एवं अनुभवजन्य, तथ्यपरक लेख, पुस्तक समीक्षाएँ प्रकाशनार्थ सादर आमंत्रित हैं।

* लेखको से आग्रह है कि अपने लेख सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित दोप्रतियों / **PM-5** कृति देव 10 **(Kruti Dev 10)** में टाईप, सीडी एवं एक प्रिंट आउट सहित भेजें। **email-mpdsaujn@gmail.com**
* प्रत्येक आलेख के साथ आवश्यकतानुसार फुटनोट्स अथवा संदर्भ सूची अवश्य संलग्न की जानी चाहिये।
* लेख सामान्यतः हिन्दी में लिखेहों। विशेष स्थिति में अंग्रेजी भाषा में लिखे गये लेख भी स्वीकार किये जा सकेंगे
* लेख अन्यत्र प्रकाशित नहीं होना चाहिये। हाँ, यदि किसी अन्य भाषा में प्रकाशित हो चुके हों तो उनका हिन्दी में अनुवाद भी अपवाद रूप में प्रकाशनार्थ स्वीकार किया जा सकता है।
* सम्पादक मंडल कोकिसी भी लेख को प्रकाशन हेतु स्वीकृत अथवा अस्वीकृत करने का पूर्ण अधिकार है। अतः वापसी हेतु रचना के साथ लेखक का पता लिखा लिफाफा उपयुक्त डाक टिकट के साथ संलग्न होना चाहिये।
* समीक्षार्थ नव प्रकाशित पुस्तकों की दो प्रतियाँ प्रेषित की जानी चाहिये।
* प्रत्येक पुस्तक समीक्षा लेख के साथ समीक्षित पुस्तक की एक प्रति अवश्य संलग्न की जानी चाहिये।
* पूर्वदेवा का सतत् प्रकाशन सुधी पाठकों एवं लेखकों के उदार सहयोग पर निर्भर है, अतएव विशेष अनुरोध है कि पूर्वदेवा के ग्राहक बनकर, अपना आत्मीय सहयोग प्रदान करें।

ग्राहक शुल्क की दरें (Rates of Subscription) इस प्रकार हैं-

*	**आजीवन शुल्क**	**संस्थागत रू.2500/-**	**वैयक्तिक रू.2000/-**
*	**वार्षिक शुल्क**	**संस्थागत रू.350/-**	**वैयक्तिक रू.300/-**

क्रयादेश एवं शुल्क सहित सभी प्रकार के पत्र व्यवहार का पता :

मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी

बाणभट्ट मार्ग, सेंट्रल स्कूल के सामने, उज्जैन(म.प्र.)456010

म.प्र.दलित साहित्य अकादमी के लिये पी.सी बैरवा द्वारा न्यू गुलाब प्रिन्टर्स, उज्जैन-से मुद्रित एवं बाणभट्ट मार्ग, उज्जैन(म.प्र) से प्रकाशित ***आर.एन.आई.रजिस्ट्रेशन नं. 61954/95***

सम्पादन- डॉ.हरिमोहन धवन

ISSN 0974-1100